आधुनिक नारियों के लिए योगाभ्यास

प्राप्तिस्थान

योगनिकेतन, २५५/४ राजापार्क जयपुर-३०२ ००४.

प्रस्तावना

माताओं और प्रिय बहनों । परम गुरुदेव की अपार कृपा से आपकी सेवा में अत्यंत सरल और पूर्ण उपयोगी योगासन प्राणायाम एवम् षट्कर्म (शरीरशुद्धि) की पुस्तक प्रस्तुत कर रही हूँ । इस पुस्तक के अनुसार निरन्तर अभ्यास के द्वारा आप सदा के लिए तन, मन, से नीरोगी एवं सुखी रह सकती हैं तथा परिवार को सुखी कर सकती हैं । इस पुस्तक को प्रकाशित करने का उद्देश्य मात्र नारी समाज की सेवा करना तथा भूले भटकों को सही मार्ग पर लाना है । क्योंकि केवल नारियों के लिए योगाभ्यास की सरल और उपयोगी पुस्तकों का अभाव सा देखा गया है । इस पुस्तक में आसनों का क्रम इतना सरल और उपयोगी क्रमानुसार बताया गया है जिसको १५ वर्ष की लड़की से लेकर ८० वर्ष की वृद्धा तक कर सकती हैं । स्वास्थ्य और सौन्दर्य का तो यह कोष (खजाना) है ।

आज का मानव भौतिकवाद से इतना घिरा हुआ है, भौतिकता में इतना आसक्त है वह अपनी प्राचीन विद्या तथा रहन-सहन को भूल गया है । योग के विषय में लोग कई प्रकार की शंकाये तथा तर्क करते हैं कि योगाभ्यास क्यों करें? इससे क्या लाभ है? क्या उपयोगिता है? महिलाओं को योगाभ्यास क्यों करना चाहिये? योग क्या है? आदि–आदि । इन शंकाओ के निवारणार्थ इस पुस्तक में सर्वप्रथम इन बातों पर प्रकाश डाला गया है जिससे इन शंकाओं से रहित हो कर निश्चल मन से आप योगाभ्यास में प्रविष्ट हो सकें । किसी भी वस्तु अथवा क्रिया का पूर्ण लाभ तभी हो सकता है जब इसमें निश्चय हो तथा मन उस ओर लगा हुआ हो । द्वितीय प्रकरण में सचित्र आसनों का वर्णन किया गया हैं । तृतीय प्रकरण में प्राणायाम का व चतुर्थ प्रकरण में शुद्धिकरण की क्रियाओं (षट्कर्म) का विवेचन किया गया है । ये संपूर्ण क्रियाएँ शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । जैसे नित्य प्रति भोजन करना अनिवार्य है उसी प्रकार योगाभ्यास भी अनिवार्य है ।

योग का मार्ग लम्बा अवश्य है लेकिन रोग पर इसका निश्चित ही प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। आसनों के द्वारा शरीर के विकार दूर होते हैं। प्राणायाम का सीधा प्रभाव नाड़ी संस्थान व मस्तिष्क पर पड़ता है। शिथिलीकरण से मानसिक तनाव दूर होते हैं तथा सहनशक्ति बढ़ती है। शुद्धिकरण की क्रियाओं से शरीर के विषाल तत्वों तथा अवरोधों का निष्कासन होता है।

इस पुस्तक में आसन वर्ग की तालिका को चार भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम पीठ के बल लेटकर करने वाले आसन, द्वितीय पेट के बल पर करने वाले आसन, तृतीय बैठ कर करने वाले आसन, चतुर्थ खड़े हो कर करने वाले आसन। आपके मन में शंका होगी कि ऐसा क्यों? पहले बैठकर या खड़े हो कर क्यों न करें?

प्रकृति के नियम के अनुसार इन आसनों का क्रम एक शिशु के जन्म की क्रियाओं के अनुसार बनाया गया है। जब एक नवजात शिशु का जन्म होता है वह कभी भी उसी समय न पेट के बल लेट सकता है और न चल फिर सकता है न बैठ सकता है। माताएँ इस बात को अच्छी प्रकार से जानती होंगी कि जब तक बच्चा माता के स्तनपान तक सीमित रहता है तब तक पीठ के बल के लेटता रहता है और अपनी माता के दूध को पचाने के लिए हाथों और पाँवों को कई प्रकार से हिलाता रहता है। प्रकृति स्वयं उसको पाचन के लिए हाथ पाँव हिलाने के व्यायाम सिखाती है। उसी प्रकृति की आज्ञानुसार वह अपना भोजन पचाने की क्रिया को करता रहता है परन्तु यह कोई नहीं जान सकता कि यह बच्चा ऐसा क्यों करता है। लोग समझते है कि खेल रहा है। वास्तव में खेल के साथ वह और भी कुछ कर रहा है। प्रकृति हमें सर्वप्रथम पीठ के बल लेटना सिखाती है इसलिए सर्वप्रथम पीठ के बल लेट कर करने के आसन बताये गये हैं।

जब वही बच्चा ६ या ८ मास का होता है तो प्रकृति उसको कोई पदार्थ मुख में लेने का बोध सिखाती है। आपने देखा होगा कि बच्चे के आगे जो भी पदार्थ आता है वह उसे उठा कर मुख में डाल लेता है चाहे वह उस वस्तु को खाने या चबाने में समर्थ नहीं है फिर भी उसकी प्रबल इच्छा उसे खा जाने की होती है। कभी कभी वह ठोस वस्तु मुख में फँसा भी बैठता है। मातायें उसके हाथ में एक बिस्किट दे देती हैं। वह नरम होने के कारण सारा खा जाता है।

जब बच्चे की प्रकृति इस प्रकार की होती है तो उस समय उसे जितनी बार सीधा लिटाया जाय वह स्वतः पेट के बल लेट जाता है। ऐसा क्यों करता है? क्योंकि वह कुछ खाने की इच्छा करता है और उसे खाने की वस्तु को पचाने के लिए प्रकृति उसको पेट के बल लेटने की आज्ञा देती है और वह पेट के बल उल्टा हो जाता है। अतः पीठ के बाद पेट के बल के आसन बताये गये हैं। पेट के बल के आसन करने से पाचनशक्ति अच्छी होती है। भोजन के सही ढंग से पचने पर रक्त और रस अच्छे बनते है और पेट के समस्त रोग जड़ सहित मिट जाते हैं।

इसके उपरान्त बच्चा बैठना सीखता है तथा बैठ कर कई प्रकार की क्रियाएं करता हैं इसलिए पेट के बल के बाद बैठकर करने के आसन बताये गये हैं। अन्त में वह खड़ा होना तथा चलना फिरना सीखता है अतः अन्त में खड़े होकर करने के आसन बताये गये हैं। अतः प्रकृति जिस प्रकार बालक को सिखाती है उसी आधार पर आसनों का क्रम रखा गया है जिसमें ज्यादा परिश्रम भी नहीं करना पड़ता तथा याद रखने में भी आसान है। इस क्रम के अनुसार प्रत्येक आसन का पूरक आसन भी स्वतः ही हो जाता है।

जैसा कि तैतिरीय उपनिषद् में कहा गया हैं 'मातृ देवो भव। 'पितृ देवो भव'। माता में देव बुद्धि रखो। पिता में देव बुद्धि रखो। माता-पिता ही प्रथम गुरू हैं। अतः यह पुस्तक हमारे प्रथम गुरू मातु श्रीके आशीर्वाद तथा पितु श्री के चालीस वर्षो के वैज्ञानिक खोज, अनुभवों, स्व अभ्यास एवं अनुसंधान के पश्चात् सार स्वरुप में हमको प्राप्त हुए प्रशिक्षण तथा हमारे पन्द्रह वर्ष से स्व-अनुभव तथा अभ्यास के आधार पर लिखी गयी है। हम मातुश्री तथा पितुश्री के बहुत आभारी हैं जिन्होंने हमें इस योग्य बनाया। श्री सद्गुरुदेव के हम महान्ऋणी हैं जिन्होंने अन्धकार मय मार्ग से हटाकर प्रकाशमय मार्ग पर चलाया तथा अपने अल्प विचारों द्वारा महिला समाज की सेवा करने की प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान की। परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्दजी महाराज के तथा पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज के हम अत्यन्त आभारी हैं जिन्हें इस पुस्तक को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई तथा उन्होंने महिला समाज के कल्याणर्थ उपयोगी मानते हुए इसके प्रकाशन की पूर्ण स्वीकृति तथा आशीर्वाद प्रदान किया, साथ ही साथ इस पुस्तक के व्याप्त प्रसार और महिला समाज को इससे लाभान्वित होने

का पूर्ण आशीर्वाद दिया। इन सब के आशीर्वाद तथा कृपा से ही आज आप यह पुस्तक अपने हाथ में पा रही हैं।

इस पुस्तक का सब से बड़ा श्रेय श्री विष्णुभाई पंड्याजी को है। हम उनके अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने इसे प्रकाशित करके हमारे विचारों को प्रकाश में लाने का तथा महिला समाज तक पहुँचाने का महान् कार्य किया है। इस पुस्तक को साहित्य मुद्रणालय द्वारा मुद्रित कर के महिला समाज के कल्याणार्थ उदार हृदय से सेवा की।

हम इस पुस्तक को गुरूदेव के श्री चरणों में तथा भारतीय नारियों की सेवा में समर्पित करते है। आप नित्य प्रति प्रातः एव सांय या एक समय प्रातःकाल नियम पूर्वक इस पुस्तक में वर्णित क्रियाओं को करके जीवन का सही और सच्चा लाभ प्राप्त करें, यही हमारे जीवन की सफलता है। भगवान आप को निरोगी और सुखी रखें।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

ॐ

ॐ श्री सद्गुरु परमात्मने नमः

विश्वव्यापी सर्वत्र विराजमान सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में जो आद्यन्त रहित ; पि दिन ही में समस्त अनन्त कोटि ब्रह्माण्डो की तथा उनमें स्थित सर्व वस्त् ओं की उत्पत्ति, स्थिति, विलय होते रहते हैं उस सच्चिदानन्द भगवान को इस का असंख्य कोटिश साष्टाङ्ग प्रणिपात ।

इस विश्व पिता परमेश्वर की असीम कृपा इस पुस्तक के समस्त पाठकों के सदा बनी रहे । प्रभु आप को आरोग्य, दीर्घ आयु, बल, पुष्टि प्रदान करें को सुखमय तथा यशस्वी और सफल जीवन का आशीर्वाद करें ।

भारत वर्ष के सब नारी वर्ग की सेवा में समर्पित यह योगासन प्रशिक्षण की -पुस्तक और इसकी लेखिका तथा प्रदर्शिका (चित्र द्वारा) भगिनी द्वय चारिणी योग शक्ति तथा ब्रह्म शक्ति इन दोनों की एक अमूल्य देन है । यह क हमारे राष्ट्र के मातृ वृन्द तथा उतनी ही मात्रा में राष्ट्र की भावी पीढ़ी के ङ्गीक स्वास्थ्य एवं कल्याण को साधने में एक महान सेवा है । वर्तमान र में योगासन प्राणायाम का अनेक व्यक्तियों तथा संस्थाओं के द्वारा अधिक र है । लेकिन योग के अभ्यास का विज्ञान प्राप्त करने के लिए उचित कों का अभाव है जो कि तृप्तिकर रूप में तथा अपने स्वयं अभ्यास-अनुभव ाधार पर लिखी हुई हो । इस कमी को यह पुस्तक वास्तव में पूरा करती यह गुरु महाराज स्वामी श्री शिवानन्द जी की कृपा प्राप्त है । मैं इस क को देखकर प्रसन्न हूँ और लेखिका-भगिनियों को बधाई देता हूँ । इन पर ज श्री स्वामी शिवानन्दजी की गुरुकृपा, आशीर्वाद सदैव बनी रहे ।

इस पुस्तक के प्रकाशक श्री विष्णुप्रसाद पंड्या जी पर गुरु महाराज की कृपा तथा आशीर्वाद सदैव बना रहे जिन्होंने इस पुस्तक को साहित्य लय के द्वारा प्रकाशित करके नारी समाज के कल्याणार्थ पूर्ण सेवा की ।

इस पुस्तक का व्याप्त प्रसार हो तथा हमारे राष्ट्र की स्त्रीयाँ तथा नवयुवतियाँ पूर्ण लाभ उठायें ।

स्वामी चिदानन्द

८-१२-'८४ ॐ

THE DIVINE LIFE SOCIETY

(REGD.)

Blessed Brahmashakti

Om Namo Narayanaya,

God bless you

Please make your valuable "Yoga" Book useful to everyone, not merely for women.

Make it complete.

May Sri Gurudev's grace be upon you.

Swami Krishnananda

25-12-1984

अनुक्रमणिका

१) प्रस्तावना ३
२) स्वामी चिदानन्दजी महाराज का आशीर्वाद ... ७
३) स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज का आशीर्वाद ... ८

प्रथम प्रकरण

१) महिलाओं के लिए आसन संबन्धी आवश्यक निदश ... १
२) शरीर और स्वास्थ्य ३
३) महिलाओं के लिए योग की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उपयोगिता ६
४) योग क्या ? ११
५) अष्टाङ्ग योग परिचय १४

द्वितीय प्रकरण (आसन)

प्रथम खण्ड (ध्यान के आसन)

१) सुखासन २५
२) पद्मासन २६
३) स्वस्तिकासन २७
४) सिद्धासन २८

द्वितीय खण्ड (पीठ के बल करने के आसन)

१) तानासन २९
२) पवनमुक्तासन ३०
३) उत्तानासन ३१
४) चक्रासन ३२
५) मकरासन ३३
६) सर्वाङ्गासन ३४
७) हलासन ३५
८) मत्स्यासन ३६

तृतीय खण्ड (पेट के बल के आसन)

१) भुजंगासन ३८
२) कटि भुजंगासन ३९
३) मुक्त भुजंगासन ३९
४) अर्धशलभासन ४०
५) शलभासन ४१
६) धनुरासन ४२
७) उड्डयानासन ४३
८) नौकासन ४४

चतुर्थ खण्ड (बैठकर करने के आसन)

१) वज्रासन ४५
२) शशांकासन ४६
३) वक्षस्थल क्रिया ४८
४) कूर्मासन ४९
५) योगमुद्रा ५०
६) उष्ट्रासन ५१
७) सुप्त वज्रासन ५२

८) गोमुखासन ५३
९) अर्ध मत्स्येन्द्रासन ५४
१०) गोरक्षासन ५५
११) अर्ध पश्चिमोत्तानासन ५६
१२) पश्चिमोत्तानासन ५७
१३) पक्षीआसन ५८
१४) विस्तृत हस्त पाद शिरासन ५८
१५) मयूरीआसन ५९
१६) उदरचालन ६०
१७) तडागी मुद्रा ६०
१८) उड्डियान बंध ६०
१९) अग्निसार मुद्रा ६१

पंचम खण्ड (खड़े होकर करने के आसन)

१) त्रिकोणासन ६२
२) पादहस्तासन ६३

षष्ठ खण्ड (शिथलीकरण)

१) शवासन (शिथिलासन) ६४

तृतीय प्रकरण (प्राणायाम)

१) प्राणायाम की उपयोगिता ६६
१) नाड़ी शोधन प्राणायाम ६८–६९
२) उज्जायी प्राणायाम ७०
३) सीत्कारी ७१
४) शीतली ७२
५) भस्त्रिका ७३
६) भ्रामरी ७३
७) केवल कुम्भक ७४

चतुर्थ प्रकरण (शुद्धिकरण की क्रियाएँ (षट्कर्म))

१) कुंजल क्रिया (गजकरणी) ७५-७७
२) सूत्र नेति ७७
३) जल नेति ७८
४) वस्त्र धौति ८०
५) शंख प्रक्षालन ८१
    १) कटि ताड़ासन ८२
    २) कटि चक्रासन ८३
    ३) उकडू आसन ८४
    ४) कटि भुजंगासन ८५
६) त्राटक ८७

परिशिष्ट

यौगिक चिकित्सा ८८

ॐ श्री परमात्मने नमः

प्रथम प्रकरण

1. महिलाओं के लिए आसन सम्बन्धी आवश्यक निर्देश

योगाभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

(१) योगासन का समय प्रातः ५ से ७ बजे तक निश्चित करना चाहिये। यदि हो सके तो सायंकाल भी दोपहर के भोजन के ४ घन्टे पश्चात् कर सकते हैं।

(२) ताड़ासन करते हुए उठें। इससे आलस्य दूर हो जाता है।

(३) उठते ही हाथ मुहँ धोकर दंतमंजन करें यदि हो सके तो स्नान करने के पश्चात् ही योगासन का अभ्यास करें।

(४) यथा शक्ति ठंडा पानी पीये (१ गिलास से ४ गिलास तक)। प्रातःकाल ठंडा पानी पीकर योगाभ्यास करने से कब्ज दूर होता है।

(५) ध्यान रखे की योगाभ्यास खाली पेट ही करें। जल के सिवाय कुछ भी न लें।

(६) यदि कब्ज आदि की शिकायत हो तो प्रथम तीन आसन अवश्य ही कर लें (१) ताड़ासन (२) कोणासन (३) कटि चक्रासन। इसके बाद अन्य आसनों के क्रम को आरम्भ करें।

(७) योगासन के लिए स्थान उपयुक्त होना चाहिये। गर्मियो में खुला स्थान और सर्दियों में शुद्ध हवादार कमरे में करना चाहिए।

(८) योगाभ्यास करने के लिए दोहरा कम्बल होना अत्यंत आवश्यक है। खाली जमीन पर योगाभ्यास करना हानिकारक हो सकता है तथा योगासन द्वारा जो शक्ति अर्जित होती है उसका क्षय हो जाता है।

(९) महिलाओं को योगाभ्यास के समय सलवार कमीज या स्लेक्स या स्ट्रेच पेन्ट का प्रयोग करना चाहिये। इससे वे आसन स्वतन्त्रता पूर्वक कर सकती हैं।

(१०) जहाँ तक सम्भव हो सके अभ्यास के समय ढीले वस्त्र ही पहनने चाहिये तंग वस्त्र शरीर के लिए हानिकारक हो सकते हैं ।

(११) जहाँ तक हो सके योगाभ्यास नियमित करें ।

(१२) मासिक धर्म में चार या पांच दिन तक आसन न करें ।

(१३) भोजन बिलकुल साधारण होना चाहिये : मादक, बहुत खट्टा, कडवा, गरिष्ट (भारी भोजन) अधिक मसालेवाला भोजन नहीं करना चाहिये । यह शरीर के लिए हानिकारक हैं ।

(१४) गर्भावस्था में योगाभ्यास न करें ।

(१५) बच्चा होने के बाद दो मास तक योगाभ्यास नहीं करना चाहिये ।

(१६) ध्यान रहे कि षट्कर्म आदि क्रियाएँ बिना किसी के निर्देशन के न करें । किसी योग्य व्यक्ति के निर्देशन में ही ये क्रियाएँ की जानी चाहिये अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती हैं ।

(१७) योगाभ्यास के तुरन्त बाद कुछ नहीं खाना चाहिये । लगभग आधे घन्टे के बाद ही कुछ खाना चाहिये । तुरन्त बाद दूध पीना चाहिये ।

(१८) कम आयु की लड़कियों को योगाभ्यास नहीं करना चाहिए । लगभग १२ वर्ष की आयु के बाद ही इस में प्रवेश करना चाहिए । इससे पूर्व करने मे बच्चों का विकास क्रम रूक जाता हैं ।

(१९) एक आसन समाप्त होने के बाद जब तक श्वास सम अवस्था में न हो तब तक दूसरा आसन न करें अन्यथा थकावट महसूस होगी तथा श्वास की गति बढ़ जायगी । अत: कुछ आराम करने के पश्चात् ही दूसरा आसन करें ।

(२०) आसन करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए । प्रत्येक क्रिया को धीरे धीरे करें झटके के साथ नहीं ।

(२१) शनैः शनैः अभ्यास की अवधि बढाते जायें तभी अधिक लाभ होगा ।

(२२) योगाभ्यास में प्रवेश करने से पूर्व डाक्टरी जाँच अवश्य करवा लें यदि किसी रोग की सम्भावना हो । किसी रोग विशेष के होने पर योग्य व्यक्ति से परामर्श करके ही अभ्यास करें ।

---

२. शरीर और स्वास्थ्य

शरीर और स्वास्थ्य जीवन रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। ये दोनों ही जीवन के मुख्य आधार है। मानव शरीर तो बहुत सौभाग्य से प्राप्त होता है। परमात्मा ने यह सुन्दर मानव देह हमें दिया है। यह प्राप्त होना कितना दुर्लभ है। कितने जन्मों के बाद शुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप ही यह दुर्लभ मानव देह प्राप्त होता है। लेकिन केवल मानव देह प्राप्त हो जाना ही पर्याप्त नहीं है। परमात्मा द्वारा प्राप्त इस अमूल्य मणि की पूर्णतः सुरक्षा करना तथा प्रभु के इस मन्दिर को प्रभु के निवास योग्य बनाये रखना हमारा परम कर्तव्य है। जिस प्रकार हम अपने बाह्य शत्रुओं से सावधान रहने का प्रयत्न करते है उसी प्रकार आन्तरिक शत्रुओं से भी सावधान रहने का प्रयत्न करना चाहिये। मानसिक अशान्ति और शारीरिक रोग ही इसके आन्तरिक शत्रु है। अतः देह का निरोग और स्वस्थ होना भी आवश्यक है। क्योंकि स्वस्थ होने पर ही जीवन के किसी भी क्षेत्र में उन्नति कर सकते है। ऐसा कहा भी जाता है "जी सुख जहान सुख" अर्थात यदि स्वास्थ्य अच्छा है तो सब कुछ अच्छा लगता है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं है तो दुनिया का महान् से महान् ऐश्वर्य भी नीरस लगता है। व्यर्थ लगता है। जिस आनन्द को व्यक्ति धन, ऐश्वर्य, भोग आदि में खोजता है वह आनन्द वस्तुतः उनमें नही है। वह आनन्द तो हमारे भीतर ही विद्यमान है। यदि धन, सम्पत्ति भोग ऐश्वर्य आदि में आनन्द और सुख होता तो आज की धनिक जनता इतनी दुखी नहीं दिखाई देती। हम देखते हैं कि एक श्रमिक रूखी सूखी रोटी खाकर भी प्रसन्न और सुखी दिखाई देता है तथा दूसरी ओर धनिक वर्ग पूर्ण साधन सम्पन्न होने पर भी सदैव चिन्तित और दुखी दिखाई देता हैं। इसका मुख्य कारण स्वास्थ्य ही हैं। आहार के अनुसार शारीरिक परिश्रम नहीं हो पाता। परिणाम स्वरूप रोग उस पर आक्रमण कर देते हैं तथा व्यक्ति दुखी और चिन्तित होता है। अतः मनुष्य त्रिलोकी का स्वामी भी क्यों न हो जाये लेकिन स्वस्थ न हो तो जीवन दुखमय तथा कलेशमय ही रहता है। जैसे किसी व्यक्ति के सामने स्वादिष्ट व्यञ्जनों से युक्त भोजन की थाली पड़ी है और उसे खूब भूख भी लगी है और उसे खाने की प्रबल इच्छा भी हो रही है लेकिन अजीर्णता या किसी रोग के कारण उसे नहीं खा सकता तो ऐसे भोजन से तथा उसकी इच्छा करनेवाले उस शरीर से क्या लाभ? इससे तो परिणाम में उसे दुख ही प्राप्त होगा।

इसलिए कहा गया है "पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख धन और माया अत: अच्छा स्वास्थ्य ही आपकी सबसे बडी पूंजी है, धन है ।

हमारे स्वास्थ्य का आईना मुख है । जिस प्रकार आईने में प्रतिबिम्ब स्प दिखाई देता है उसी प्रकार चेहरे को देखकर कोई भी व्यक्ति किसी के स्वास का अन्दाज लगा सकता है । स्वस्थ व्यक्ति सदैव प्रसन्न दिखाई देता है । उस चेहरा सदैव खिला रहता है । वह बिना किसी थकावट के दीर्घकाल तक कार्य क सकता है । इसके विपरीत अस्वस्थ व्यक्ति सदैव उदास तथा चिन्तित दिखा देता हैं । थोड़ा कार्य करने के पश्चात् वह थक जाता है ।

साधन चतुष्टय की पूर्ति के लिए यह मूल्यवान देह प्राप्त हुआ है । इसक पूर्ति शरीर के पूर्णत: स्वस्थ होने पर ही हो सकती है । कहा भी है – "शरी माध्यम् खलु धर्म साधनम्" अर्थात् शरीर ही धर्म साधन का माध्यम है ।

चरक संहिता में कहा गया है—धर्मार्थकाम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् रोगास्तस्यापहर्तारो श्रेयसो जीवितस्य च ।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और जीवन के कल्याण का सर्वोत्तम कारण स्वास्थ्य ही है । रोग इस स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले होते है । अस्वस्थता से दो हानियाँ होती है । प्रथम तो शरीर पर रोग आक्रमण करके इस पर अपना अधिकार कर लेते है और दूसरा हमारी आय का अधिकांश भाग डाक्टरों के पास चला जाता है । जितना धन जीविका पालन में नहीं लगता उससे अधिक डाक्टर की फीस तथा दवाओं में लग जाता है । इतना होने के बाद भी रोग का समूल नाश नहीं होता । समूल नाश होने की बात तो दूर रही अपितु और अधिक रोग पनप उठते हैं । क्या हमारे पास कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे इनका समूल नाश हो ? इसके उत्तर में यही कहना होगा कि इसके लिए अति सरल, सुगम और उत्तम उपाय हमारे ऋषियों और योगीयों द्वारा प्रदत्त योग विद्या रूपी अगाध खजाना है जिससे व्यक्ति स्वस्थ होकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है । अत: यदि हमें इस बहुत बडे व्यय से बचना है और शरीर को स्वस्थ रखना है तो हमें आज से ही योगमार्ग को अपना लेना चाहिए । योग का सम्बन्ध शरीर और मन दोनों के साथ है । अत: अभी भी समय है उठो, जागो, आलस्य और प्रमाद को छोडो यदि सुखी जीवन जीना चाहते हो ।

शारीरिक उन्नति या शारीरिक विकास भी उतना ही आवश्यक है जितना मानसिक विकास। यदि शरीर स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट नहीं है तो कोई भी उन्नति सम्भव नहीं है क्योंकि कोई भी कार्य इस शरीर द्वारा ही होना सम्भव है। इस आधुनिक युग में हमारा जीवन पूर्णत: मशीनों पर निर्भर करता है। हमारा खान-पान, रहन-सहन बिल्कुल कृत्रिम हैं। हम प्रकृति के नियमों से बहुत दूर हट चुके हैं और अनेक रूपों में अपने प्राकृतिक सौंदर्य को खो दिया है और कृत्रिम सौंदर्य प्राप्ति के पीछे लगे रहते हैं। शारीरिक आराम और इन्द्रिय सुख के लिए आधुनिक मनुष्य के पास अनेक सुविधाएँ हैं।

प्राचीनकाल में महिलाएँ कितना परिश्रम करती थीं। घर का प्रत्येक कार्य स्वयं करती थीं। प्रत्येक वस्तु पवित्र और शुद्ध होती थी। इस लिए वे अधिकांशत: स्वस्थ रहती थी। लेकिन आज की महिलाएँ शारीरिक परिश्रम कम करतीं हैं। अधिकांशत: नौकरों पर निर्भर रहती हैं। उनके द्वारा आहार के अनुसार परिश्रम नहीं हो पाता। परिश्रम न होने से भोजन नहीं पच पाता और उसके रस नहीं बन पाते। परिणामस्वरुप वह भोजन लाभ के स्थान पर हानिकारक हो जाता है और शरीर में कई विकार उत्पन्न कर देता है। इन विकारों से छुटकारा पाने का एक मात्र साधन योगाभ्यास ही है। योगाभ्यास के साथ साथ संयमित भोजन। क्योंकि यदि भोजन संयमित नहीं है तो योगाभ्यास का कुछ लाभ नहीं। इस लिए योग में एक कहावत है :

खाने को आधा करो पानी को दुगना।
व्यायाम को तिगुना करो, हंसने को करो चौगुना।
याद है तो आबाद है भूल गये तो बरबाद है।

यही स्वास्थ्य की सबसे बडी कुन्जी है! अत: योगासनों के अभ्यास से निश्चय ही महिलाएं आधुनिक युग के शारीरिक तथा मानसिक तनावों से छुटकारा पा सकती हैं।

---

३. महिलाओं के लिए योग की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उपयोगिता

आजकल समाज में कुछ ऐसी गलत धारणा प्रचलित हो गयी है कि स्त्रियों को योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। एक ओर तो यह धारणा तथा दूसरी ओर कुछ महिलाएं पुरुषों से सीखने में संकोच करती हैं। लज्जा का अनुभव करती हैं। अत: अपनी स्थिति को स्पष्टत: व्यक्त नहीं कर सकती। इस क्षेत्र में शिक्षित महिलाएं इतनी नहीं हैं जो उन्हें सही मार्ग प्रदर्शन करें।

मेरे विचार में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं के लिए योगासन अत्यन्त आवश्यक है। राष्ट्र की उन्नति का पूर्ण उत्तरदायित्व महिला पर ही है क्योंकि यदि माता स्वस्थ और सद्‌गुण सम्पन्न होगी तो बालक भी वैसा ही होगा। स्वस्थ और शक्तिशाली बालक ही आगे जाकर राष्ट्र के लिए कुछ कार्य कर सकता है। यदि माता रोगी होगी तो निःसंदेह बालक भी रोगी ही होगा और वह राष्ट्र के लिए अनुपयोगी रह जायगा। माता को ही प्रथम गुरु कहा गया है क्योंकि वही सर्व प्रथम बालक को शिक्षित करती है। अत: महिलाओं को योग का दुगना लाभ हैं। प्रथम वे स्वयं स्वस्थ तथा निरोग रहेंगी और दूसरा आने वाली सन्तान को स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट बना सकेंगी। अपनी आय का बहुत बड़ा हिस्सा सुरक्षित कर सकेंगी तथा चिंताओं से मुक्ति पा सकेंगी।

आजकल व्यायाम की अनेक विधियाँ प्रचलित है – जैसे शरीर को पुष्ट करने वाले व्यायाम, भार उठाने की क्रियाएँ, दौड़ना, दण्डबैठक आदि। इन व्यायामों के द्वारा केवल शरीर की मांसपेशियों का विकास तथा विस्तार होता है। इससे शरीर को अधिक परिश्रम करना पडता है तथा श्वास की गति बढ़ जाती है। श्वास की गति बढ़ने से हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता हैं। इससे प्राणशक्ति का ह्रास होता है। हमारी आयु प्राणों पर निर्भर करती है। परमात्मा मनुष्य को निश्चित श्वास दे कर ही पृथ्वी पर भेजते हैं। प्राणवायु का ह्रास होने पर आयु क्षीण होती है। शनैः शनैः उम्र बढ़ने पर विकसित मांसपेशियाँ तथा स्नायु ढीले पड़ जाते हैं तथा चर्बी बढ़ने लगती हैं। भोजन की मात्रा बढ़ जाती है। प्रत्येक आयु के व्यक्ति इन व्यायामों को नहीं कर सकते जैसे-बच्चे या वृद्ध और बीमार या दुर्बल इन्हें नहीं कर सकते। अतः इन व्यायामों की अपेक्षा योगासन अति उत्तम है। यह

पूर्ण विधि है। अन्य व्यायामों के परिणाम स्वरुप जो हानियाँ बताई गयी हैं योगासन द्वारा इसके विपरीत होता है अर्थात् लाभ होता है। योगासन करते समय हमारे श्वास की गति धीमी होती है तथा साथ ही साथ प्राणों का संचय भी होता है परिणामस्वरुप व्यक्ति की आयु की वृद्धि होती है। आज के व्यस्त जीवन में यदि आप आधा घन्टा निकाल कर भी इन क्रियाओं को कर लें तो बहुत कुछ लाभ प्राप्त कर सकती हैं।

कुछ लोगों की यह भ्रान्त धारणा है कि योगासन से केवल शारीरिक लाभ होता है। ऐसा मानना गलत हैं। योगासन से तो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक त्रिगुणित लाभ प्राप्त होता है। वस्तुतः शरीर स्वस्थ होने पर मन प्रसन्न रहता है तथा शान्ति और आनन्द का अनुभव होता है। तभी आध्यात्म की ओर झुकाव होता है। आध्यात्म की आधार शिला आसन ही हैं। आधुनिक मानव की स्थिति को देखते हुए ही महर्षि पातञ्जलि ने अष्टाङ्ग योग बनाया अर्थात् योग के आठ अङ्ग बनाये। योग के आदि प्रवर्तक भगवान शंकर हैं तथा उन्होंने सर्वप्रथम इस की शिक्षा पार्वतीजी को दी थी। योग का अर्थ है जोड़ना। आध्यात्मिक दृष्टि से अपनी अन्तरात्मा के साथ एकाकार होना ही योग है। महर्षि पातञ्जलि ने आसन की परिभाषा की है "स्थिरं सुखं आसनम्"। अर्थात् आसन शरीर की वह स्थिति है जिस में व्यक्ति अपने शरीर और मन के साथ शान्त, स्थिर एव सुखपूर्वक रह सके। आसन की स्थिरता होने पर ही व्यक्ति आध्यात्म की ओर अग्रसर हो सकता है।

योग के प्रथम तीन अङ्ग यम, नियम और आसन का सम्बन्ध शरीर से है। इनसे शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। आधुनिक युग में यम नियमों को तो बिल्कुल ही भुला दिया गया है। आसन तथा चतुर्थ अङ्ग प्राणायाम का सम्बन्ध मन से है। अग्रिम तीन अङ्ग प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान का सम्बध आध्यात्म से है। लेकिन आप घबरायें नहीं कि इन सात सीढ़ियों को पार करने पर ही हम तीनों लाभ प्राप्त कर सकेंगे। आप केवल आसन और प्राणायाम से ही तीनों लाभ प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन इसके लिए आवश्यकता है नियमित अभ्यास और संयमित आहार की। जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है – आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। स्मृति लाभे सर्व ग्रन्थिनां विप्रमोक्षः॥ (छा. उ. ७–२६–२)

अर्थात् आहार शुद्ध होने पर अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तः करण शुद्ध

होने पर आत्मा की स्मृति प्राप्त होती है। आत्म स्मृति प्राप्त होने पर सारी आसक्तियाँ और बन्धन टूट जाते हैं। आहार के साथ साथ ब्रह्मचर्य का पालन करना भी आवश्यक है। इन सबके बिना योगाभ्यास उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे छेदयुक्त घड़े में डाला गया पानी।

शारीरिक उपयोगिता : योगासनों के अभ्यास से आंतरिक इन्द्रियों का सुगठन होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई ऐसी विधि नहीं है जिससे आंतरिक इन्द्रियों का सुचारु रुप से गठन हो सके। कुछ आसनों से ब्रह्मचर्य धारण में सहायता मिलती है। ब्रह्मचर्य ही हमारे स्वास्थ्य का मुख्य आधार है। शरीर सुदृढ तथा कांतिमय बनता है। इनके द्वारा मस्तिष्क स्नायु, नाडियाँ तथा अन्य भिन्न भिन्न अङ्ग स्वस्थ हो कर शक्ति प्राप्त करते हैं तथा शरीर में स्फूर्ति आती है। कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। मेरुदण्ड लचीला तथा शरीर हल्का हो जाता है। नाडियों में रक्त का संचार ठीक प्रकार से होता रहता है। शरीर के किसी भी अंग में रक्त इकट्ठा नहीं होने पाता। पाचनशक्ति तीव्र होती है तथा उचित मात्रा में पाचक रस तैयार होते हैं। हमारे शरीर की कार्यप्रणाली पाचक रसों पर ही निर्भर करती है। शरीर के प्रत्येक अंग को उचित मात्रा में सही ढंग से रस तथा रक्त मिलने पर ही उनकी कार्य प्रणाली ठीक ढंग से चलती है। जहाँ रक्त और रस नहीं पहुंचता वह अंग कार्य करना बन्द कर देता है। परिणाम स्वरुप वह विकृत हो जाता है। योगासन द्वारा असाध्य रोग भी समूल नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई एसी क्रिया नहीं है जिससे रोगों का समूल नाश हो सके। जैसे—मधुमेह और दमाँ जैसे रोगों का डाक्टर के पास कोई इलाज नहीं है लेकिन योगाभ्यास द्वारा रोगी इससे मुक्ति पा सकते हैं। ये क्रियाएँ परीक्षण में खरी उतरी हैं। कोई इन्कार नहीं कर सकता। इस पर बहुत शोधकार्य हो चुका है और चल रहा है तथा बहुत से रोगी इस रोग से मुक्ति पा चुके हैं। अतः योगासनों के नियमित अभ्यास से रोगों का समूल नाश हो जाता है तथा सुन्दर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है। हृदय तथा फेंफडे स्वस्थ रहते हैं तथा वे ठीक ढंग से कार्य करते हैं क्योंकि हृदय तथा फेफडे ही हमारी श्वास प्रणाली के आधार हैं। इन्हीं के आधार पर संपूर्ण शरीर टिका हुआ है। ओज शक्ति की रक्षा और वृद्धि होती है जिससे चेहरे पर सुन्दरता आती है। रीढ़ पुष्ट होती है। रीढ़ पुष्टि का अर्थ है बुढ़ापा न आना सदा युवावस्था बनी रहना। जिसकी रीढ़ लचीली तथा सीधी रहती है वह सदा निरोग रहता है। जो रोगों से मुक्त रहेगा वह वृद्ध नहीं होगा।

मानसिक उपयोगिता : आज का युग इतना जटिल है कि मानव का संपूर्ण जीवन भागदौड़ में बीत जाता है। सर्वत्र अशांति ही दिखाई देती है। प्रत्येक व्यक्ति चिंतित दिखाई देता है। इसका मूल कारण आपका मन ही है। आप स्वयं अपने को विषय भोग, आसक्ति, मोह आदि में बांधते हैं फिर दुःखी तथा चिंतित होते हैं। शांति-अशांति, सुख–दुःख सब मन की ही उपज है। मन अत्यन्त शक्तिशाली है। यह वायु से ज्यादा तेज और सागर से भी अधिक गहरा है। तितली से ज्यादा चंचल और मौसम से ज्यादा परिवर्तनशील है। हमारे संकल्पो विकल्पों का यही स्रोत है। अर्जुन जैसे महाज्ञानी पुरुषने भी भगवान से इस मन की चंचलता के विषय में प्रश्न किया था–

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ (गीता ६. ३४)

अर्थात् हे कृष्ण ! क्योंकि यह मन बहुत चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बहुत दृढ़ और बलवान है। अतः उसको वश में करना वायु की भांति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ।

लेकिन इतनी जटिलता से गुजरते हुए भी शान्ति और सुख प्राप्त करने का एकमात्र सरल और सुगम साधन हमारे ऋषि महर्षियों द्वारा प्राप्त योग विद्या ही है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को भी यही उपाय बताया है—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (गीता ६. ३५)

हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! बारम्बार योग का अभ्यास करने से और वैराग्य से मन वश में होता है। यहाँ वैराग्य कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि हम घरबार या काम धन्धों को छोड दें अपितु मन को बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करें। योग दर्शन में महर्षि पातञ्जलि ने भी यही कहा है—"अभ्यासवैराग्याभ्याम् तन्निरोधः"। अर्थात् अभ्यास और वैराग्य द्वारा चित्त की वृत्तियों को रोका जा सकता है।

आजकल रोग का मुख्य कारण भी मानसिक तनाव है। योग के सतत अभ्यास से मानसिक तनाव दूर होते हैं तथा चित्त एकाग्र होता है। जितने समय तक कोई क्रिया करते हैं तब तक मन उसी पर टिका रहता है। शनैः २ अभ्यास से मन बाह्य पदार्थों से हटकर स्वतः ही अन्तर्मुख हो जाता है। प्राणायाम ही एक ऐसा

साधन है जिससे मन इधर उधर न भागकर एक जगह टिक जाता है। स्थिर हो जाता है। आसन प्राणायाम द्वारा मन शक्तिशाली बनता है तथा कष्ट सहन करने में समर्थ होता है। सुप्त शक्तियाँ जाग्रत होती हैं। इन्द्रियाँ वश में होती हैं। मन के मल दूर होते हैं तथा अन्तः करण शुद्ध होता है। बुद्धि बलवती होती है और स्मरण शक्ति बढ़ जाती है। संकल्प शक्ति बढ़ती है।

आध्यात्मिक उपयोगिता : जैसा कि पहले कहा गया है अपनी अन्तरात्मा के साथ एकाकार होना ही योग है तथा आसन ही आध्यात्म की आधार शिला है। आसन का सम्बन्ध हठयोग से है। हठयोग के बाद ही राजयोग में प्रवेश होता है। राजयोग का अर्थ ही अन्तरात्मा के साथ एकाकार होना है। जिस समय हम आसन करते हैं तब शरीर के द्वारा तो आसन विशेष होता है तथा मन उसकी स्थिति पर स्थिर रहता है। इस स्थिति में हमें अन्तरात्मा से जप करना चाहिये। प्रभु स्मरण या भगवद् ध्याम करना चाहिये। मन का तो स्वभाव है वह कहीं न कहीं जायगा ही। अतः उसे अन्यत्र कहीं न ले जाकर भगवद् चिन्तन में ही लगाये रखना है। इससे एक ही समय में हमारे दो कार्य हो जायेंगे। आसन भी और भगवत् स्मरण या ध्यान भी।

मनुष्य को कोई भी कष्ट या दुःख उसके कर्मों के कारण ही प्राप्त होता है। इन कर्म बन्धनों से छूटने का एकमात्र उपाय भगवत् स्मरण ही है तथा साथ ही साथ यह भगवत् साक्षात्कार तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। आसनों के अतिरिक्त प्रत्याहार धारणा और ध्यान के तीन साधन बताये गये हैं। इनका सम्बन्ध अध्यात्म से है। इनके अभ्यास से व्यक्ति आत्मा के साथ एकरुप हो जाता है तथा यही मानव मात्र का अन्तिम लक्ष्य है।

४. योग क्या ?

योग के आदि प्रवर्तक भगवान शिव थे। शिवजी से नाथ सम्प्रदाय चला है। नके प्रथम शिष्य थे मत्स्येन्द्र। इसका भी एक इतिहास है। किसी समय आदिनाथ कर किसी द्वीप में स्थित थे। वहाँ जन रहित अर्थात् एकान्त देश समझकर र्वती को योग का उपदेश कर रहे थे। तीर के समीप जल में रहता हुआ कोई त्स्य उस योगोपदेश को सुनकर एकाग्रचित्त होकर निश्चल देह से वहाँ रहने लगा। नश्चलकाय उस मत्स्य को देखकर और इसने योग का श्रवण किया है यह ानकर कृपालु आदिनाथ शंकरजीने उसके ऊपर जल का सिंचन किया। प्रोक्षण रने से ही वह मत्स्येन्द्र सिद्ध हो गया। उसको ही मत्स्येन्द्रनाथ कहते हैं।

शिवजी ने हठयोग को सम्पूर्ण तापों का नाशक और सम्पूर्ण योगों का साधक कहा है। आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक त्रिविध तापों से तपायमान मनुष्यों के लिए हठयोग समाश्रय रुप है। इन तापों में आध्यात्मिक ताप दो प्रकार का है- शारीरिक और मानसिक। शारीरिक दुःख व्याधि से होता है और मानसिक दुःख काम क्रोध आदि से होता है। व्याघ्र सर्प आदि से उत्पन्न हुए दुःख को आधिभौतिक कहते है। सूर्य आदि ग्रहों से उत्पन्न हुए दुःख को आधिदैविक कहते हैं। इन तीन प्रकार के तापों से तप्त मनुष्यों के लिए हठयोग सुखदायी है ऐसा भगवान शिव ने हठयोग में कहा है।

शिव संहिता में शिवजी कहते हैं कि मेरे द्वारा कहा गया यह योगशास्त्र गोपनीय है। इसलिए इसे तीनों लोकों में से केवल उसी को देना चाहिये जो महात्मा और श्रेष्ठ भक्त हो तथा जिसकी इसमें पूर्ण निष्ठा तथा विश्वास हो क्योंकि योग्यपात्र को दी गयी विद्या ही फलीभूत होती है अन्यथा बंजर भूमि में डाले गये बीज की भांति वह नष्ट हो जाती है।

वेद के दो मत हैं--(१) कर्म काण्ड (२) ज्ञान काण्ड। कर्मकाण्ड और ज्ञान काण्ड के भी दो-दो भेद माने गये हैं। कर्मकाण्ड विधि और निषेध के भेद से दो प्रकार का है। निषेध कर्म वह है जिसके करने से अवश्य ही पाप होता है। विधि कर्म वह है जिसके करने से निश्चय ही पुण्य की प्राप्ति होती है।

विधि कर्म नित्य नैमित्तिक और सकाम के भेद से तीन प्रकार का है। देवपूजन, सन्ध्यावंदन आदि नित्य कर्म है इनके न करने से पाप होता है। सकाम

कर्म फल की इच्छा से किया जाता है। पर्वकाल में तीर्थ आदि के पुण्य जल स्नान दान आदि करना नैमित्तिक कर्म है जिसके करने से पुण्य होता है।

इन कर्मों के परिणाम स्वरुप दो प्रकार का फल माना गया है। (१) स (२) नरक। स्वर्ग और नरक दोनों ही अनेक प्रकार के हैं पुण्य कर्म करने व को स्वर्ग और पाप कर्म करने वाले को नरक की प्राप्ति होती है। यह सृ निश्चय ही कर्म बन्धन से युक्त है इससे अन्यथा नहीं समझना चाहिये। सृ के कर्मबन्धन से अभिप्राय है कि संसार में आकर मनुष्य जो भी कर्म या अव करता है जब तक उसके फलका भोग नहीं किया जाता और जब तक किंचि भी कर्म शेष रहता हैं तब तक संसार के बन्धन से छुटकारा नहीं मिलता।

स्वर्ग में जीव को अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव होता है और इ प्रकार नरकमें उसे अनेक प्रकार के दु:सहनीय दु:खों को भोगना होता है। पा कर्मो के करने से दु:ख की और पुण्य कर्मो के करने से सुख की प्राप्ति होती है इसलिए सुख की इच्छा करने वाले व्यक्ति निश्चय ही विविध प्रकार के पुण कर्म किया करते हैं।

योगी साधक के लिए आवश्यक है कि वह कर्मकाण्ड के माहात्म्य को जान लेने के पश्चात् पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्मो को छोडकर ज्ञान काण्ड मे प्रवृत्त हो जाय। श्रुति का वचन है कि—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो"
(बृहदारण्यक उपनिषद् ४-५-६)

आत्मा ही देखने योग्य है, आत्मा ही सुनने योग्य है, आत्मा ही मनन करने योग्य है तथा निदिध्यासन के योग्य है। अत: प्रयत्न पूर्वक आत्मा का ही सेवन करना चाहिये। यही योग है। ऐंसा भगवान शंकर ने शिव संहिता में कहा है। क्योंकि योगाभ्यास द्वारा चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है। चित्त की एकाग्रता होने पर ज्ञान उत्पन्न हो जाता है एवं उसी ज्ञान से जीवात्मा की मुक्ति होती है। परम योगी महादेवजी ने अपने मुखारविन्द से कहा है

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीश्वरी। (योगबीज १८)

हे परमेश्वरी ! योग विहीन ज्ञान कैसे मोक्षदायक हो सकता है। अत: योग साधन के अतिरिक्त दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का कोई साधन नहीं है।

योगशास्त्र में योग की परिभाषा की गयी है **"सर्वचिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते"**। (योगशास्त्र)

जिस समय मनुष्य सब चिन्ताओंका परित्याग कर देता है, उस समय उसके मनकी उस लयावस्था को योग कहते हैं।

महर्षि पातञ्जलि के अनुसार "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"। (पातञ्जल योग–समाधिपाद–२) अर्थात् चित्त की सभी वृत्तियों को रोकने का नाम योग है। वासना और कामना से लिप्त चित्त को वृत्ति कहा है। इस वृत्ति का प्रवाह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में मनुष्य के हृदय पर प्रवाहित होता रहता है। चित्त सदैव अपनी स्वाभाविक अवस्था को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता रहता है, किन्तु इन्द्रियाँ उसे बाहर आकर्षित कर लेती हैं। उसको रोकना और उसकी बाहर निकलने की प्रवृत्ति को निवृत्त करके उसे फिर पीछे घुमाकर परमात्मा के पास पहुँचने के पथ में ले जाने का नाम ही योग है। हम अपने हृदयस्थ परमात्मा को इसलिए नहीं देख पाते कि हमारा चित्त हिंसादि पापों से मैला और आशादि वृत्तियों से आन्दोलित हो रहा है। यम, नियम आदि की साधना से चित्त का मैल छुड़ाकर चित्त वृत्ति को रोकने का नाम ही योग है।

भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद् भगवद् गीता में (१८) अठारह प्रकार के योग बताये हैं जैसे सांख्ययोग, कर्मयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, विज्ञानयोग, पुरुषोत्तमयोग, मोक्षयोग आदि–आदि। ये सब योग एक ही प्रधान योग के अर्थात् जीवात्मा परमात्मा के ही अङ्ग, प्रत्यङ्ग मात्र हैं क्योंकि सभी का अन्तिम लक्ष्य परमात्मा के साथ मिलन है। योगी याज्ञवल्क्यजी ने भी इसे ही योग कहा है–

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।
अर्थात् जीवात्मा–परमात्मा का मेल ही योग है।

५. अष्टाङ्गयोग परिचय

योग भारत वर्ष की अमूल्य सम्पत्ति है । दर्शनशास्त्र महर्षियों की योग विद्या का ही चमत्कार है । न केवल स्मृति, पुराण, आयुर्वेद तथा ज्योतिषादि शास्त्र ही, अपितु समस्त विद्याए योगाभ्यासजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के मधुर मनोहर अमृत फल हैं।

एकाग्रता, समाधि तथा योग तीनों शब्द एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं । संसार का कोई भी ऐसा व्यावहारिक या पारमार्थिक कार्य नहीं है जो बिना चित्त की एकाग्रता के सम्पन्न हो सके । जहाँ चित्त चञ्चल हुआ कि विकास का क्रम रूक जाता है । चित्त की एकाग्रता ही विनाश को विकास में परिवर्तित करने का माध्यम है । हमारे ऋषि मुनियों को जो सिद्धियाँ या उपलब्धियाँ हुई वे सब एकाग्रता के ही कारण हुई । आज के नये वैज्ञानिक अविष्कार भी न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों की एकाग्रता के ही परिणाम है । अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफल होने के लिए एकाग्रता या योग का आश्रय लेना अनिवार्य है ।

योग शब्द "युज् समाधौ" धातु से "घञ्" प्रत्यय होकर बना है । इसका अर्थ समाधि ही मानना चाहिये । समाधि चित्तवृत्ति निरोध की क्रिया शैली है इसी कारण महर्षि पातञ्जलि ने स्पष्टतः चित्तवृत्तियों के निरोध को ही योग कहा है । चित्तवृत्तियों के निरोधार्थ ऋषि मुनियों द्वारा चार प्रक्रियाएँ बतायी गयी हैं । ये मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग के नाम से प्रख्यात हैं ।

योगदर्शन में योग के आठ अङ्ग बताये गये हैं । "यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयो अष्टावङ्गानि । (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान (८) समाधि । इन आठ अङ्गों के भी अन्य कई उपाङ्ग हैं ।

पातञ्जल योगदर्शन में यम तथा नियम के ५-५ भेद कहे गये हैं । जाबाल दर्शनोपनिषद् में यम तथा नियम के १०-१० भेद बताये गये है जो निम्न है (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य (५) दया (६) आर्जव (७) क्षमा (८) धृति (९) परिमित आहार (१०) बाहर भीतर की पवित्रता

अहिंसा : वेद में बतायी हुई विधि के अतिरिक्त जो मन, वाणी और शरीर द्वारा किसी को किसी प्रकार का कष्ट दिया जाता है या उसका प्राणों से वियोग

कराया जाता है वही वास्तविक हिंसा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई हिंसा नहीं है। इस हिंसा का सर्वथा त्याग ही अहिंसा है। आत्मा सर्वत्र व्याप्त है। उसका शस्त्र आदि के द्वारा छेदन नहीं हो सकता हाथों और इन्द्रियों द्वारा उसका ग्रहण होना भी सम्भव नहीं है इस प्रकार की जो बुद्धि है उसे ही वेदान्त वेत्ताओं ने श्रेष्ठ अहिंसा बताया है।

सत्य : नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा जो जिस रूप में देखा, सुना और समझा हुआ विषय है, उसको उसी रूप में वाणी द्वारा अथवा संकेत द्वारा प्रकट करना सत्य है। अथवा सब कुछ सत्य स्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही है। परमात्मा के अतिरिक दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इस प्रकार का जो निश्चय है उसी को वेदान्त ज्ञान के परगामी विद्वानो ने सबसे श्रेष्ठ सत्य कहा है।

अस्तेय : दूसरों के रत्न स्वर्ण अथवा मुक्तामणि से लेकर एक तृण तक के लिए भी मन न चलना। दूसरों की छोटी या बडी किसी भी वस्तु के लिए मन में कभी लोभ न लाना ही अस्तेय है।

ब्रह्मचर्य : मन, वाणी और शरीर के द्वारा सहवास का परित्याग ही ब्रह्मचर्य कहा गया है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है 'ब्रह्म' अर्थात् परमात्मा मे 'चर' अर्थात् विचरण करना। अर्थात् काम क्रोधादि शत्रुओं को संताप देने वाले मन को परब्रह्म परमात्मा के चिन्तन में संचरित करना, लगाये रखना ही सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य है।

दया : सब प्राणियों को अपने ही समान समझकर उनके प्रति मन, वाणी और शरीर द्वारा आत्मीयता का अनुभव करना (अपनी ही भाँति उनके दुःख को दूर करने और उन्हें सुख पहुँचाने की चेष्टा करना ही।) दया कही जाती है।

आर्जव : पुत्र, मित्र, स्त्री, शत्रु तथा अपने आत्मा में भी सदा मनका एकसा भाव रखना ही आर्जव (सरलता) है।

क्षमा : शत्रुओं द्वारा मन, वाणी और शरीर से भी भली भाँति पीड़ा दी जाने पर बुद्धि में तनिक भी क्षोभ न आने देना ही क्षमा है।

धृति : वेद से ही संसार को मोक्ष की प्राप्ति होनी है अन्यथा नहीं। इस प्रकार का जो दृढ़ निश्चय है उसी को वैदिकों ने धृति कहा है। अथवा मैं आत्मा हूँ, आत्मा से भिन्न दूसरा कुछ नहीं है। इस निश्चय से कभी विचलित न होने वाली बुद्धि को सर्वोत्तम धृति कहा जाता है।

परिमित आहार : थोड़ी मात्रा में शुद्ध सात्त्विक अन्न ग्रहण करना, उदर के दो भाग अन्न से और एक अंश जल से पूर्ण करके चतुर्थ अंश को खाली रख छोड़ना-इस प्रकार जो योग मार्ग के अनुकूल भोजन है यही परिमित आहार कहा जाता है ।

बाहर भीतरकी पवित्रता : साबुन, और जल आदि से जो अपने शरीर के मलों को छुडाया जाता है उसे बाह्य शौच कहते हैं । मन के द्वारा शुद्ध भावों का जो मनन है उसे मानसिक शौच माना गया है । इसके अतिरिक्त "मैं शुद्ध आत्मा हूं" इस ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ शौच (पवित्रता) कहते हैं । यह शरीर अत्यन्त मलिन है और देहधारी आत्मा अत्यन्त निर्मल है । इस प्रकार शरीर और आत्मा का अन्तर जान लेने पर किसको पवित्र किया जाय ? जो मनुष्य ज्ञान शौच का परित्याग करके बाह्य शौच में ही रत रहता हैं वह मूढ स्वर्ण को त्यागकर मिट्टी के ढेलेका संग्रह करता है । ज्ञान रूपी अमृत से तृप्त एव कृतार्थ हुए योगी के लिए कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रहता । यदि वह रहता है तो वह तत्त्ववेत्ता नहीं है ।

इस प्रकार यह दस यम ही योग की नींव है । हठयोग प्रदीपिका में भी दस यम बताये गये हैं ।

अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः ।
दयार्जव मिताहारः शौचं चैव यमा दश ॥

इसी प्रकार दस नियम वर्णित किये गये हैं–

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् ।
सिद्धान्तवाक्य श्रवणं ह्रीमती च तपो हुतम् ॥
नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्र विशारदैः ॥

योग शास्त्र के विद्वानों ने दस नियम कहे हैं–(१) तप (२) सन्तोष (३) आस्तिकता (४) दान (५) ईश्वर का पूजन (६) सिद्धान्त वाक्यों का श्रवण (७) लज्जा (८) बुद्धि (९) तप (१०) होम ।

तप : सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करना तथा इनके स्वाद को मारना । वेद में वर्णित विधि से कृच्छ और चन्द्रायण आदि व्रतों द्वारा शरीर को सुखाना, उसे क्षीण करना ही तप है ।

सन्तोष : हानि होने पर शोक न होना तथा लाभ होने पर प्रसन्नता ना होना अर्थात् दोनों अवस्थाओं में समान भाव रहना, दैवेच्छा से जो कुछ मिल जाय उतने से ही हृदय में प्रसन्नता बनी रहना ही सन्तोष है।

आस्तिकता : वेदों और स्मृतियों में बताये हुए धर्म पर दृढ़ विश्वास तथा ब्रह्म को सत्य और जगत को असत्य मानना ही आस्तिकता है।

दान : दान कई प्रकार का है। प्रथम दान उपदेश का दान है अर्थात् ज्ञान दान। इससे व्यक्ति भवसागर से पार हो जाता है। दूसरा अन्न और जल का दान है। क्लेश में पड़े हुए पुरुषको न्यायोपार्जित धन अथवा अन्य आवश्यक वस्तुएँ देना दान है।

ईश्वर पूजन : तन, मन और बुद्धि को भगवान में लगाकर निष्काम भाव से भगवान का दास होकर फूल पत्ती तथा धूप आदि से भावपूर्वक पूजा करना ही ईश्वर पूजन है। इसके अतिरिक्त राग आदि दोषों से रहित हृदय, असत्य आदि से अदूषित वाणी और हिंसा आदि दोषों से मुक्त जो कर्म हैं उन्हीं का नाम ईश्वर पूजन है।

सिद्धान्त श्रवण : सत्य, ज्ञान, अनन्त, सर्वोत्कृष्ट, नित्य, अविचल एवं परमानन्द ही अपना आत्मा है इस सिद्धान्त को बारम्बार सुनना ही सिद्धान्त श्रवण है।

लज्जा : वैदिक तथा लौकिक मार्ग में जो निन्दित कर्म माना गया है उसको करने में जो स्वाभाविक संकोच होता है उसे ही लज्जा कहा गया है।

मति : गुरुजनों के कहने पर भी वेद विरुद्ध मार्ग से सम्बन्ध न रखते हुए सम्पूर्ण वैदिक उपदेशों में जो पूर्णतः श्रद्धा होती है उसी का नाम मति है। श्री शुकदेवजी के अनुसार शुभ कर्मों की इच्छा करना, न हो सके तो भी हृदय में उन्हें धारण करना, न किसी के कहने पर बहकना, न किसी को बहकाना, जगत के सुख को देखकर भी मन में उसकी इच्छा न करना, स्वर्ग आदि को तुच्छ जानना, कोई स्तुति या आदर करे अथवा निन्दा या गाली दे दोनों में निश्चल रहना यही दृढ़ मति है।

जप : वेदोक्त रीति से ही मन्त्रों की बार बार आवृत्ति को जप कहते हैं। जप दो प्रकार का बताया गया है—वाचिक और मानसिक। वाचिक जप उच्च

स्वर से और उपांशु दो प्रकार का माना गया है । इसी प्रकार मानसिक जप भी मनन और ध्यान के भेद से दो प्रकार का है । उच्च स्वर से किये गये जाप की अपेक्षा उपांशु जप हजार गुना उत्तम बताया गया है । इसी प्रकार उपांशु की अपेक्षा मानसिक जप सहस्रगुना श्रेष्ट बताया गया है । हरि और गुरू की स्तुति पढ़ने को भी जप कहते हैं ।

होम : होम दो प्रकार का है । प्रथम वैदिक विधि से अग्नि में तिल, जौ आदि सामग्री की आहुति देना होम है । द्वितीय ज्ञान रूपी अग्नि में इन्द्रियों का होम करना ।

इस प्रकार ये दस नियम वर्णित किये गये हैं । इन यम और नियमों के पालन के बाद ही आसन में अधिकार होता है ।

आसन : हठयोग का तीसरा अङ्ग आसन है । शरीर को दृढ़ एवं मन को स्थिर करने वाली समस्त पद्धतियां आसन कहलाती हैं । आसन के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जगत में जितनी जीव योनियाँ हैं उतने ही प्रकार के आसन हैं । चौरासी लख आसन जानो योनिन की बैठक पहिचानो । चौरासी लाख जीव योनियाँ हैं । अतः भगवान महादेव ने उतनी ही संख्या में आसनों का वर्णन किया है । उन सब की गणना कहाँ तक की जाय ? अतः उन में से भी भगवान शंकर ने ८४ आसन ही बताये हैं । उनमें भी मर्त्य लोक में मानव के लिए मङ्गलकारक ३३ आसन है जो निम्नलिखित नामों से जाने जाते हैं । (१) सिद्धासन (२) स्वस्तिकासन (३) पद्मासन (४) बद्धपद्मासन (५) भद्रासन (६) मुक्तासन (७) वज्रासन (८) सिंहासन (९) गोमुखासन (१०) वीरासन (११) धनुरासन (१२) मृतासन (१३) गुप्तासन (१४) मत्स्यासन (१५) मत्स्येन्द्रासन (१६) गोरक्षासन (१७) पश्चिमोत्तानासन (१८) उत्कटासन (१९) संकटासन (२०) मयूरासन (२१) कुक्कुटासन (२२) कूर्मासन (२३) उत्तानकूर्मासन (२४) उत्तानमण्डूकासन (२५) वृक्षासन (२६) मण्डूकासन (२७) गरूडासन (२८) वृषासन (२९) शलभासन (३०) मकरासन (३१) उष्ट्रासन (३२) भुजङ्गासन (३३) योगासन । इस प्रकार आसनों का विवरण दिया गया है । इनमें से महिला वर्ग के लिए जो आसन उपयुक्त हैं उनका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे आसन प्रकरण में करेंगे जो चित्र सहित है ।

हठयोग प्रदीपिका व शिव संहिता में प्रधान आसन चार ही माने गये है और

उनमें भी सिद्धासन को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। चरणदासजी ने दो आसन मुख्य माने है—

तिनमें दोय अधिक परधानैं। तिनकूँ सब योगेश्वर जानैं॥
आसन सिद्ध पद्म कहलावै। इनकूँ करि निश्चय ठहरावै॥
अरु आसन सब रोग भजावैं। ये दो आसन योग सधावैं॥

प्राणायाम : इस शरीर में सप्तद्वीपों के सहित सुमेरु पर्वत विद्यमान है। सरिता, सागर, पर्वत, क्षेत्र, क्षेत्रपाल ऋषि मुनि और सभी नक्षत्र, ग्रह, पुण्य तीर्थ क्षेत्र एवं पीठ और पीठ देवता सभी की इस शरीर में विद्यमानता है। अभिप्राय यह है कि इस शरीर में ही सब पुण्य स्थान तपोवन और देवालय आदि स्थित हैं। इसलिए साधक को अपने शरीर में स्थित उन स्थानों को जानकर वहीं पुण्य संचय करना चाहिए। उसे कहीं अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं है।

सृष्टि और संहार के करनेवाले चन्द्र सूर्य इस देह में ही भ्रमण करते रहते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी यह पांचों तत्त्व भी देह में सदा ही विद्यमान रहते हैं। तीनों लोकों में जितने भी भूत हैं वे सभी शरीरस्थ सुमेरु के आश्रय में रहते हुए अपने अपने व्यवहार में प्रवृत्त रहते हैं। यह शरीर ब्रह्माण्ड संज्ञक है अर्थात् ब्रह्माण्ड और शरीर में कोई भेद नहीं है। "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" जो कुछ इस शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है। जैसे ब्रह्माण्ड में सभी देश और सुमेरु आदि पर्वत स्थित हैं वैसे ही शरीर में सुमेरु पर्वत विद्यमान है और उसके शृंग के ऊपर अपनी आठ कलाओं के सहित चन्द्रमा व्यवस्थित है। वह चन्द्रमा अधोमुख रहकर दिनरात अमृत की वर्षा करता रहता है। उस अमृत के दो भेद हैं—सूक्ष्म और स्थूल। शरीर की पुष्टि के लिए इडा नाड़ी के मार्ग से जो पवित्र जलरूपी मन्दाकिनी प्रवाहित है वह अवश्य ही शरीर की रक्षा और पोषण करती है। अमृत रश्मियों से युक्त इडा नाड़ी नासिका के वाम भाग में स्थित रहती है। मेरु (मेरुदण्ड) के मूल में स्थित नीचे की ओर अपनी बारह कलाओं से युक्त हुआ सूर्य स्थित रहता है। दक्षिण भाग अर्थात् पिङ्गला नाड़ी के मार्ग से प्रजापति ऊर्ध्व गतिवाला होता है।

मानव शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ियां प्रधान हैं। उनमें चौदह नाड़ियां प्रमुख मानी गयी है। वे है सुषुम्ना, इडा, पिङ्गला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, कुहू,

सरस्वती, पूषा, शखिनी, पयस्विनी, वारूणा, अलम्बुजा, विश्वोदरी और यशस्विनी इन चौदह नाडियों में भी पिङ्गला, इडा और सुषुम्ना यह तीन नाडियाँ प्रमुख हैं

पिङ्गला इडा और सुषुम्ना इन तीन नाडियों में से भी एक सुषुम्ना ही सर्व प्रमुख है। क्योंकि योगियों के लिए यह अत्यन्त प्रिय है तथा परमपद रूप आश्रय को देने वाली है।

प्राणायाम क्या है। प्राणयाम प्राण और आयाम इन दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण यानि श्वास, आयाम यानि लम्बाई अर्थात् प्राणों का एक निश्चित काल में लेना और निकालना ही प्राणायाम है। हमारा चित्त प्राणवायु पर निर्भर करता है। प्राणवायु के चलायमान होने से चित्त भी चलायमान होता है। प्राणवायु के निश्चल होने पर चित्त भी निश्चल होता है। प्राणवायु और चित्त इन दोनों के निश्चल होने पर योगी स्थाणुरूप को प्राप्त होता है अर्थात् स्थिर और दीर्घ काल तक जीता है।

जब तक शरीर में प्राणवायु स्थित है तब तक जीवन है क्योंकि देह और प्राण का जो संयोग है वही जीवन कहलाता है। उस प्राणवायु का जो देह से वियोग (निकलना) है उसको ही मरण कहते हैं। अतः जीवन के लिए प्राणवायु के निरोध रूप (रोकना) प्राणायाम को करना चाहिये।

प्राणायाम के तीन भेद हैं पूरक, कुम्भक और रेचक। बाहर की वायु को भीतर प्रवेश करना पूरक कहलाता है। श्वास को भीतर ही रोकना कुम्भक कहलाता है और भीतर की वायु को बाहर निकालना रेचक कहलाता है। इस प्रकार पूरक कुम्भक और रेचक इन तीनों से जो प्राण संयम होता है उसे प्राणायाम कहते है प्राणायाम के आठ भेद हैं–(१) नाड़ी शोधन (२) उज्जायी (३) सीत्कारी (४) शीतली (५) भस्त्रिका (६) भ्रामरी (७) मूर्च्छा (८) प्लाविनी। इनका विस्तार-पूर्वक वर्णन प्राणायाम अध्याय में करेंगे।

प्रत्याहार :

योग का पाँचवां अङ्ग प्रत्याहार है। विषयों में स्वभावतः विचरने वाली इन्द्रियों को बलपूर्वक वहां से लौटा लाने का जो प्रयत्न है उसी को प्रत्याहार कहते हैं। मनुष्य जो कुछ देखता है वह सब ब्रह्म है यों समझते हुए ब्रह्म में चित्त को एकाग्र कर लेना यह ब्रह्म वेत्ताओं द्वारा बताया हुआ प्रत्याहार है।

मनुष्य मरणकाल तक जो कुछ भी शुद्ध या अशुद्ध कर्म करता है वह सब परमात्मा के लिए करे और परमात्मा को ही उसे समर्पित कर दे। अथवा नित्य और काम्य सब प्रकार के कर्मों को भगवान की आराधना के भाव से करे। उन कर्मो द्वारा भगवान की पूजा करे, इसे भी प्रत्याहार कहते हैं। इस प्रकार प्रत्याहार का अभ्यास करने पर व्यक्ति के सब पाप तथा जन्म--मरण रूप व्याधि नष्ट हो जाती है। एकाग्र चित्त हो कर देह से आत्मबुद्धि को हटा कर उसे स्वयं ही निर्द्वन्द्व एवं निर्विकल्परुप अपनी आत्मा में स्थापित करने को ही वेदान्त तत्त्व वेत्ताओं ने वास्तविक प्रत्याहार माना है।

धारणा :

कर सकते । मन को एक पदार्थ पर लगायें और यह जब-जब उस पदार्थ से दूर भागे उसे बार–बार लौटायें तथा पुन: लक्ष्य की ओर लगायें । मन को सैकड़ों विचारों की मूर्तियाँ नहीं बनाने दें । अन्तर्मुख होकर विचार करें तथा सचेत होकर देखें। निरर्थक विचार, निरर्थक चिन्ताओं तथा निरर्थक भय में पड़कर मन की शक्तियों का व्यर्थ अपव्यय नहीं करना चाहिये । निरन्तर अभ्यास से मन को आधे घन्टे तक एक ही विचार पर स्थिर बनाये रखें । इस प्रकार शनै: शनै: अभ्यास बढ़ाते जायें । यही दृढ धारणा है ।

ध्यान :

श्री शंकराचार्यजीने कहा है-"अचिन्तैव परं ध्यानम्" किसी भी वस्तु का विचार न करना ही पर ध्यान है। महर्षि पातञ्जलि के अनुसार "ध्यानं निर्विषयं मन:" जब मन निर्विषय हो जाता है अर्थात् इन्द्रियों के विषय और उनके भोगों की चिन्ता से मुक्त हो जाता है तब ध्यान लग जाता है । (पातञ्जल योग सूत्र)

'ध्यै चिन्तायाम्' यह धातु है । अर्थात् 'ध्यै' धातु का प्रयोग चिन्तन अर्थ में होता है । 'ध्यै' से ही ध्यान शब्द की सिद्धि होती है । अत: स्थिर चित्त से भगवान विष्णु अथवा अपने इष्ट देव का बारम्बार चिन्तन करना 'ध्यान' कहलाता है । समस्त उपाधियों से मुक्त मन सहित आत्मा का ब्रह्म विचार में परायण होना भी 'ध्यान' है । ध्येय रूप आधार में स्थित एवं सजातीय प्रतीतियों (ब्रह्म विचार) से युक्त चित्त को जो विजातीय प्रतीतियों (सांसारिक विषयों के सभी विचारों) से रहित प्रतीति होती है उसको भी ध्यान कहते हैं । जिस किसी प्रदेश में भी ध्येय वस्तु के चिन्तन में एकाग्र हुए चित्त की प्रतीति के साथ जो अभेद भावना होती है, उसका नाम भी ध्यान है ।

ध्यान दो प्रकार का है । सगुण और निर्गुण ध्यान । जब आंख खोलकर भगवान कृष्ण की मूर्ति को देखते हैं और उस पर ध्यान करते हैं तो यह साकार ध्यान कहलाता है । जब आँख बन्दकर भगवान कृष्ण की मूर्ति का ध्यान करते है तो यह भी सगुण ध्यान है लेकिन पहले से निर्गुण है। जब अनन्त प्रकाश का ध्यान करते हैं तो यह और भी निर्गुण ध्यान है। पहले दो प्रकार के ध्यान सगुण ध्यान कहलाते हैं तीसरे प्रकार का ध्यान निर्गुण ध्यान है निर्गुण ध्यान में भी आरम्भ में मन को स्थिर करने के लिए एक रूप अवश्य होता है । कुछ समय पश्चात् यह आकार हट जाता है और ध्याता तथा ध्येय एक हो जाते हैं । ध्यान करने में

पूर्व ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का प्रयोजन इन चारों बातों का ज्ञान होना आवश्यक है ।

जो ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न, श्रद्धालु, क्षमाशील, विष्णुभक्त तथा ध्यान में सदैव उत्साह रखनेवाला हो, ऐसा व्यक्ति ही 'ध्याता' माना गया है । व्यक्त और अव्यक्त जो कुछ प्रतीत होता है, सब परमात्मा का ही स्वरूप है, इस प्रकार विष्णु का चिन्तन करना 'ध्यान' कहलाता है । सर्वज्ञ परमात्मा श्री हरि को सम्पूर्ण कलाओं से युक्त तथा निष्कल जानना चाहिये । अणिमादि एश्वर्यों की प्राप्ति तथा मोक्ष ये ध्यान के प्रयोजन हैं । भगवान विष्णु ही कर्मों के फल की प्राप्ति कराने वाले हैं, अतः उन परमेश्वर का ध्यान करना चाहिये । वे ही ध्येय हैं । चलते-फिरते, खड़े होते, सोते-जागते, आँख खोलते और आँख मींचते समय भी शुद्ध या अशुद्ध अवस्था में भी निरन्तर परमेश्वर का ध्यान करना चाहिये ।

ध्यान के समय ऐसी भावना करे कि मैं ज्योतिर्मय ब्रह्म हूँ—मैं ही नित्य मुक्त प्रणव स्वरूप वासुदेव संज्ञक परमात्मा हूँ । ध्यान से थकने पर मन्त्र का जप करें और जप से थकने पर ध्यान करें । इस प्रकार जो जप और ध्यान आदि में रहता है उस पर भगवान शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं ।

कूटस्थ एकरस एवं सर्व प्रकार के दोषो से रहित है। यह एक होते हुए भी मायाजनित भ्रम के कारण भिन्न २ प्रतीत होता है। स्वरुपत: उसमें कोई भेद नहीं है। केवल अद्वैत ही सत्य है। प्रपञ्च या संसार नाम की कोई वस्तु नहीं है। जैसे आकाश ही घटाकाश और महाकाश के नाम से पुकारा जाता है उसी प्रकार अज्ञानी पुरुषों ने एक ही परमात्मा को जीव और ईश्वर इन दो रुपो में कल्पित कर लिया है। मैं न देह हूँ, न प्राण हूँ, न इन्द्रिय समुदाय हूँ और न मन ही हूँ। सदा साक्षी रूप में स्थित होने के कारण मैं एकमात्र शिवस्वरूप परमात्मा हूँ। इस प्रकार की निश्चयात्मक बुद्धि ही समाधि कहलाती है।

मैं वह परमात्मा ही हूँ। संसार बन्धन में बँधा हुआ जीव नहीं हूँ। इसलिए मुझ से भिन्न किसी भी वस्तु को किसी भी काल में सत्ता नहीं है। सृष्टि का कारणभूत समष्टि मन भी मुझसे पृथक नही है। यह जगत और माया भी मुझसे अलग कोइ अस्तित्व नहीं रखते। इस प्रकार जिस व्यक्ति को ये परमात्मा अपने आत्मा रूप से अनुभव होने लगते हैं वह परम पुरूषार्थ स्वरूप साक्षात् परमामृतमय परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। जब योगी के मन में सर्वत्र व्यापक आत्मचैतन्य का अपरोक्ष अनुभव होने लगता है तब वह स्वयं परमात्म स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। जब मनुष्य केवल अपनी आत्मा को ही परमार्थ सत्यस्वरूप देखता है और सम्पूर्ण जगत को माया का विलास मात्र मानता है तब उसे परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है।

अर्थात् जब मन ध्येय पदार्थ में पूर्णत: लीन हो जाता है तब उसे समाधि कहते है। फिर न ध्यान रहता है न ध्याता। ध्याता और ध्यान विचारक और विचार, भक्त और भगवान एक हो जाते हैं। समाधि में त्रिपुटी का लय हो जाता है। ध्याता अपना व्यक्तित्व ईश्वर रुपी सागर मे विसर्जित कर देता है और ईश्वर का निमित्त मात्र बनने तक वहीं निमग्न तथा विस्मृत पड़ा रहता है। जब उसका मुख खुलता है तो वह बिना प्रयत्न के ईश्वरीय प्रेरणा से ईश्वर के शब्द बोलता है और जब उसका हाथ उठता है तो वह ईश्वर द्वारा आश्चर्यमयी घटना रचता है।

समाधि में चक्षु और कान भी काम नहीं करते तथा शारीरिक और मानसिक चेतना भी नहीं रहती। केवल आध्यात्मिक चेतना रहती है, सत्ता मात्र रहती है। वही आपका सच्चा स्वरूप है। यही तुरीयावस्था है जब कि मन की कोई क्रिया नहीं रहती। मन ब्रह्म में लीन हो जाता है।

द्वितीय प्रकरण (आसन)

प्रथम खण्ड

ध्यान के आसन

) पद्मासन :

सर्वप्रथम टांगों को आगे फैलाकर भूमि पर बैठें। दांया पैर बांई जंघा पर तथा बाँया पैर दाँयी जंघा पर रखें। दाँया हाथ दायें घुटने पर व बांया हाथ बाँये घुटने पर रखें। हथेलियाँ ऊपर की ओर रहें। तर्जनी अंगूठे के मध्य भाग को छूती हुई हो अर्थात् ज्ञानमुद्रा बनायें। सिर गर्दन व मेरुदण्ड को बिल्कुल सीधा, रखें। आँखें बन्द रखें। शान्ति अनुभव करने का प्रयास कीजिये। पांच मिनट से बढ़ाकर जितने समय तक किया जा सके करें।

लाभ :

इस आसन के अभ्यास से असीम शान्ति का अनुभव होता है। पाचन शक्ति बढ़कर भूख लगती है। स्वास्थ्य व सुख में वृद्धि होती है। गठिया रोग दूर होता है।

लाभ :

यह आसन ध्यान के लिए अति उत्तम है । इसमें अधिक समय तक स्थि पूर्वक बैठा जा सकता है । मन स्थिर होता है और मेरुदण्ड पुष्ट होता है ।

(४) सिद्धासन :

वाम चरण के मूल (एडी) को गुदा और लिंग इन्द्रिय के मध्यभाग यानि योनिस्थान में रखें । दक्षिण पाद को दृढ रीति से लिंग इन्द्रिय के ऊपर रखें । हाथ घुटनों पर ज्ञान मुद्रा में रहें । सिद्धयोगी इस आसन से बैठते हैं ।

लाभ :

ध्यान के लिए यह अतिउत्तम आसन है । शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है । बहत्तर हजार नाडियां शुद्ध होती हैं । ब्रह्मचर्य पालन में अत्यन्त उपयोगी है । स्त्रियों के लिए अति उत्तम है ।

द्वितीय खण्ड

पीठ के बल के आसन

अर्धपवन मुक्तासन
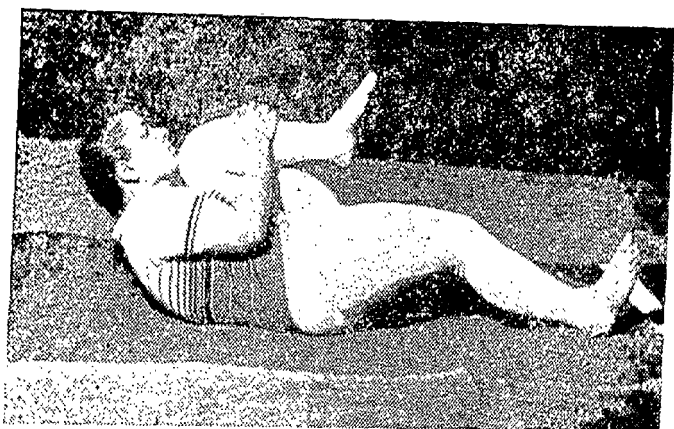
(२) पवन मुक्तासन :

पीठ के बल भूमि पर सीधे लेट जायें । सर्वप्रथम बांयी जंघा मोड़िये और जँघा को सीने के पास लाइये । दोनों हाथों की अंगुलियों को फंसाइये और बांये घुटने पर रखिये । सिर को उठाते हुए ठुड्डी से घुटने को छूने की कोशिश करें । श्वास लेते हुए धीरे धीरे जमीन पर लेटने की स्थिति में आ जायें । पूर्णत: शरीर को ढीला छोड़ दें । पुनः इस क्रिया को दांयीं जंघा से करें । तत्पश्चात् दोनों पैरों को सीने पर मोड लीजिए और भुजाओं को घुटनों के चारों ओर ऊपर

लीजिए । अर्थात् दोनों हाथों को घुटनों पर रखते हुए जँघाओं से पेट को दबायें तथा ठुड्डी को घुटनों से लगाने की कोशिश करें । यही आसन की पूर्ण स्थिति है। तीन बार करें ।

लाभ :
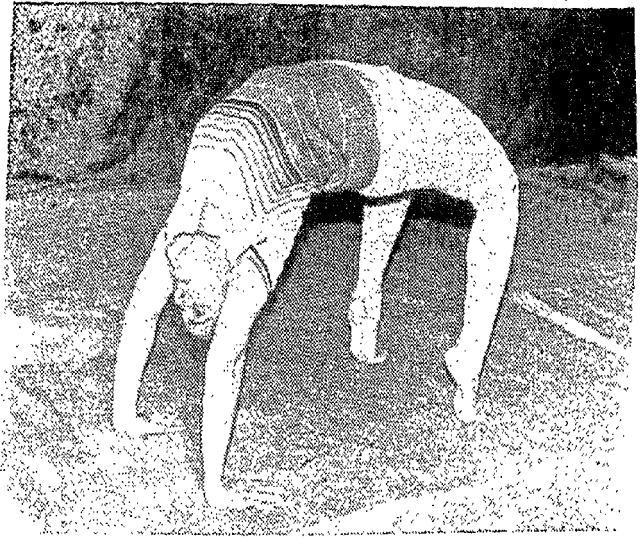
(४) चक्रासन :

पीठ के बल लेट जाओ । पांव के तलवे भूमि पर रख कर एड़ियों को जंघा के पास लाओ । दोनों पैरों में लगभग एक फुट का अन्तर रहे । हथेलियों को कनपटियों के बगल से घुमा कर इस प्रकार जमीन पर रखें कि अँगुलियों का अग्र भाग कंधों की ओर रहे । धीरे धीरे पूरे धड़ को ऊपर उठाइये । सिर को धीरे धीरे सरकाते हुए इस स्थिति में आइए कि शरीर के उपरी हिस्से का भार सिर के सबसे ऊपरी हिस्से पर पड़े । अब हाथ व पैरों को सीधा करते हुए सिर तथा शरीर को पूर्ण गोलाई में ऊपर उठाइये । यथाशक्ति रुकने के पश्चात् पहले सिर को नीचे लाइये फिर सीधी लेटी हुई स्थिति में आ जायें अर्थात् शवासन करें ।

एक बार यथाशक्ति करें ।

लाभ :

यह आसन शरीर की संपूर्ण नाडियों एवं ग्रन्थियों के लिए लाभदायक है । रीढ़ को अत्यन्त लचीली बना कर सदैव युवा बने रहने में यह आसन बहुत सहायक है । इससे शरीर पर पूर्ण नियंत्रण होता है । शरीर स्फूर्तिवान तथा हल्का हो कर थोड़े समय में अधिक कार्य करने की क्षमता प्राप्त होती है । पाचनशक्ति बढ़ती है । स्त्रियों के प्रजनन सम्बंधी कई रोग समूल नष्ट हो जाते हैं ।
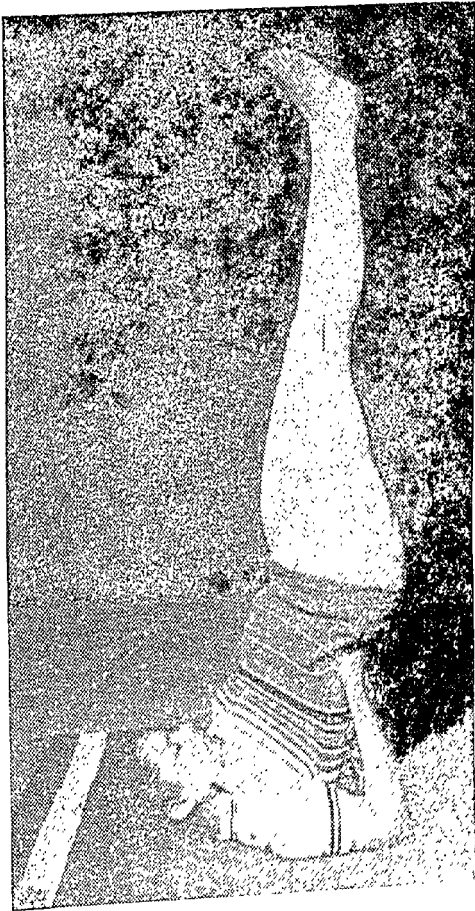
(६) सर्वाङ्गासन :

पीठ के बल सीधे लेट जाइए। दोनों हाथ जमीन पर बाजू में तथा हथेलियां नीचे की ओर खुली रहें। हाथों का सहारा दे कर धीरे धीरे टांगों को उठाएं। धड़ कूलहे व टांगों को बिल्कुल सीधा रखें। कमर को दोनों ओर हथेलियों से सहारा दें। कोहनियों को भूमि पर टिका लें। ठुड्डी का स्पर्श छाती से करें तथा पीठ कन्धे व गरदन भूमि पर सटे रहें। शरीर को हिलने अथवा इधर उधर नहीं होने दें। टांगों को सीधा रखें लेकिन तनाव न आने दें। आसन समाप्ति पर टांगों को धीरे-धीरे आराम से बिना झटके के नीचे लाएं। इसके तुरंत बाद मत्स्यासन करना चाहिये।

लाइये । हाथ जमीन पर टिके रहें । पैरों की अंगुलियों को जमीन पर टिका द
घुटनों को मिलाकर बिल्कुल सीधा रखें । टांगें जंघाएँ एक सीधी रेखा में हो
अब धीरे धीरे हाथों को उठाकर पैरों की अङ्गुलियाँ बिना झटके के पकड़ें । य
शक्ति रुकने के पश्चात् धीरे-धीरे टाँगों को भूमि पर लायें तथा शवासन
स्थिति में सीधे लेट जायें ।

लाभ :

इस आसन के अभ्यास से रीढ़ की नसें, कमर के पुट्ठे, मेरुदण्ड एवं संवेदनात्म
नाड़ी प्रणाली स्वस्थ रहती है । सर्वाङ्गासन के समस्त लाभ इससे प्राप्त होते हैं
शरीर फुर्तीला तेजस्वी तथा बलवान होता है । पुट्ठों का दर्द, कमर का शूल रो
आदि दूर होते हैं । मोटापा, पुराना मलावरोध, पुराना रक्तावरोध, गुर्दों तथ
तिल्ली आदि के रोग इससे समाप्त होते हैं । बवासीर तथा मधुमेह आदि रोगों
लिए उपयोगी है ।

(८) मत्स्यासन :

सर्व प्रथम लेटे-लेटे पद्मासन लगायें या पद्मासन लगाकर लेट जायें ।
हथेलियाँ पीछे सिर के दोनों तरफ रखें । हथेलियाँ जमीन पर टिकी रहें । हाथों
का सहारा लेकर सिर को अन्दर की ओर दबायें अर्थात् सिर की चोटी ओर

नितम्ब भाग दढतापूर्वक जमीन पर टिके रहें, छाती ऊपर की ओर उठी रहे, धड का एक पुल सा बन जाय। फिर हाथों को जंघाओं पर रखें अथवा हाथों से पैरों की अङ्गुलियों को पकड़ लें। कुछ समय इसी अवस्था में रहें तथा गहरे व लम्बे श्वास लें व निकालें। दोनों हाथों से गले की मालिश करें। आसन समाप्त करने पर धीरे-धीरे हाथों के सहारे सिर को भूमि पर टिकायें। पद्मासन खोलकर शवासन करें। जिनका शरीर स्थूल है, पैर के स्नायु मोटे हैं अतःपद्मासन नहीं कर सकते वे पैरों को सीधा फैलाकर भी रख सकते हैं। लेकिन फिर भी शनै-शनै पद्मासन का अभ्यास करते रहना चाहिये।

लाभ :

मत्स्यासन से पेट की संचित मल आदि गंदगी मलाशय में आ जाती है। कब्ज दूर होता है। दमें के रोग, राजयक्ष्मा, पुराने जुकाम आदि के लिए गहरी श्वास लेने के कारण अत्यन्त उपयोगी है। शरीर में हल्कापन महसूस होता है। इस आसन में प्लाविनी प्राणायाम करने से व्यक्ति पानी में आसानी से तैर सकता है। गले के सब रोग इस आसन से दूर होते हैं तथा पैराथाइराइड ग्रन्थि की अच्छी मालिश होती है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

तृतीय खण्ड

पेट के बल के आसन
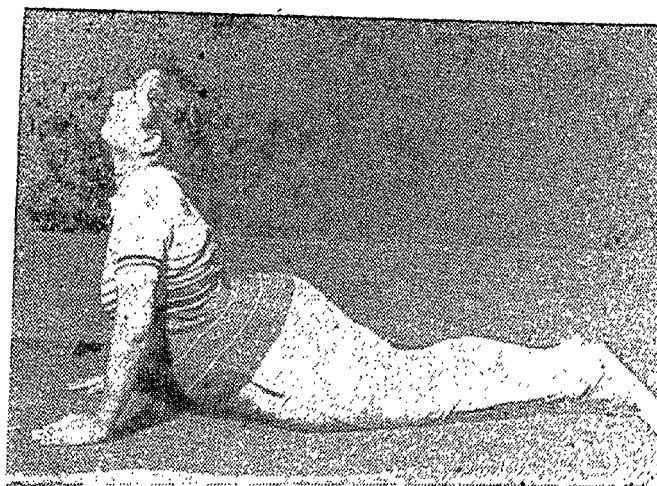
(१) भुजंगासन :

यह आसन सर्प जैसे स्थिति में बैठने से बन जाता है । नाभि तक श
का निचला भाग धरती पर ऐसे रहता है जैसे कि सर्प अपने नीचे के भाग
धरती पर टिका कर दण्ड यानि लकडी की भाँति बैठता है और सिर को
प्रकार ऊँचा उठा लेता है जिस प्रकार फन ऊँचा रहता है । सर्पाकार स्थि
रहने के कारण इसका नाम भुजंगासन है ।

विधि : पेट के बल लेट जाइये । तथा पैरों को सीधा व लम्बा कि
दीजिए । सारे शरीर की माँस पेशियों को ढीला छोड़कर शिथिलावस्थामें
जाइये । हथेलियों को कन्धों और कोहनियों के ठीक नीचे भूमि पर रखें । ना
से नीचे पैरों तक का भाग भूमि से स्पर्श करता रहे । अब हाथों का सहारा ले
हुए धीरे धीरे सिर तथा कन्धों को जमीन से ऊपर उठाइये तथा सिर को जितन
पीछे ले जा सकते हैं ले जाइये । पीठ को ऊपर की ओर तथा पीछे की ओ
झुकाते हुए गोलाकार स्थिति में लाइये । इस बात का ध्यान रखें कि पीठ
तनाव न आने पाये । यथाशक्ति रुकने के पश्चात् सिर को धीरे-धीरे नीचा करते
पूर्व स्थिति में आ जायें ।
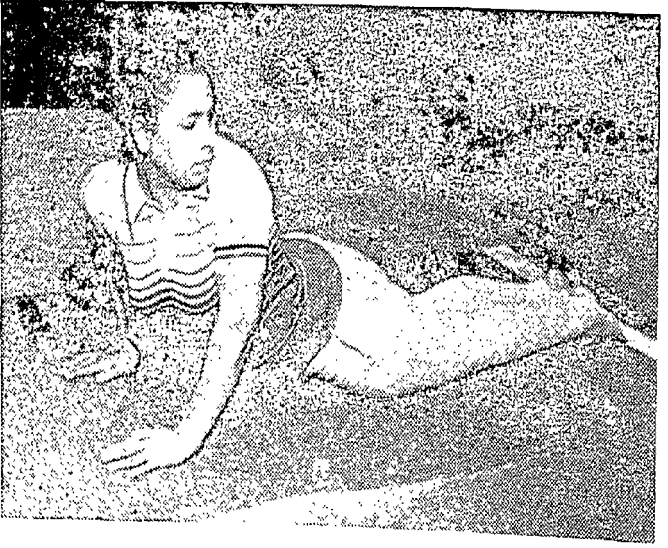
कोशिश करें तथा हाथों को भूमि से पूरा उठा लें। दृष्टि ऊपर की ओ
यही मुक्त भुजंगासन है।

लाभ :

तीनों आसनों के लाभ एक ही हैं। यह आसन विशेषकर महिलाओं के लिए अत्यन्त उत्तम है। स्त्रियों के अण्डाशय और गर्भाशय को सजीव (ठीक) रखने में सहायक है। कष्ट प्रद मासिक धर्म और अनियमित मासिक धर्म की शिकायत दूर होती है। स्त्रियों के प्रजनन सम्बन्धी विकार जैसे श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर एवं अन्य विभिन्न गर्भाशय सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। इस आसन से कुबडापन स्लिपडिस्क सम्बन्धी छोटे-मोटे दर्द पीठ के समस्त प्रकार के दर्द, माँसपेशियों का दर्द तथा पेट का दर्द, गैस की बीमारियाँ आदि ठीक होती हैं। संचित मल को अनुप्रस्थ कोलन से गुदा की ओर नीचे लाता है जिससे कब्ज दूर होती है। कुण्डलिनी जाग्रत होती है। भूख बढ़ती है। मधुमेह मे अत्यन्त लाभदायक।
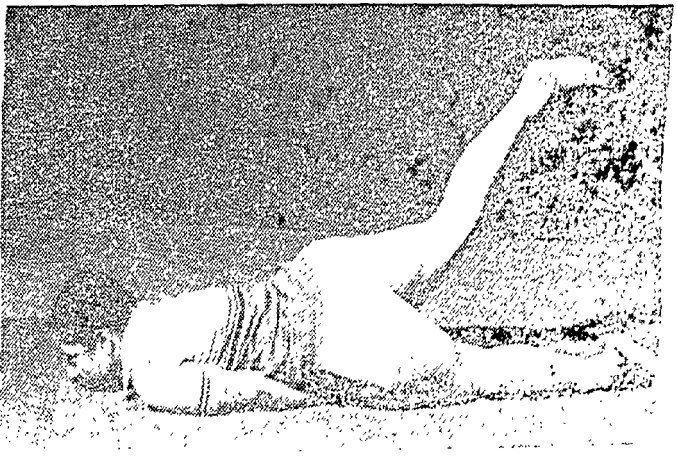
(४) अर्धशलभासन :

पेट के बल भूमि पर लेट जाइये। हथेलियां जंघाओं के नीचे ऊपर की ओर पलटी हुई रखिये। शरीर तना हुआ रखें। अब एक पैर को जमीन पर सीधा रखते हुए दूसरे पैर को हाथ का सहारा देते हुए जितना उठा सकते हैं उठाइये। ध्यान रहे कि पैर मुड़ने न पाये। तत्पश्चात् दूसरे पैर से करें।

(५) शलभासन :

दोनों हाथों को जंघाओं के नीचे ले जाकर दोनों पाँवों को साथ मिलाकर दोनों हाथों का सहारा देते हुए बिल्कुल सीधा उठाइये । नाभि से ऊपर का भाग जमीन पर रहे तथा ठुड्डी जमीन पर टिकी रहे । यथाशक्ति रुकने के बाद धीरे-धीरे पैरों को नीचे लाइये ।

लाभ :

यह आसन भुजंगासन का पूरक आसन है । इससे पेडू का अच्छा व्यायाम हो जाता है । कोष्ठवद्धता ठीक होती है । जिगर की शिथिलता और कमर का कुबड़ापन ठीक होता है । जिनकी रीढ़ की हड्डी में विकार (यानि स्लिपडिस्ट) के कारण कमर में दर्द रहता है वह ठीक हो जाता है । मधुमेह में लाभदायक है ।

(९) धनुरासन :

मुख नीचे करके पेट के बल लेट जायें। सारे शरीर को ढीला छोड़ दें। पैरों को घुटनों से मोडिये तथा हाथों को पीछे कीओर ले जाकर दोनों हाथों से पैरों के टखनों को पकडिये। फिर छाती और सिर तथा पीछे से घुटनों को ऊपर उठायें तथा शरीर को तान कर रखें जिससे धनुष का आकार बन जाय। घुटनों को पास पास रखें। धनुषाकार शरीर को आगे पीछे दायें बांयें भली प्रकार हिला सकते हैं। इससे पेटकी अच्छी मालिश होती है।

सावधानी : उच्च रक्त चाप व हृदय रोग वालों के लिए यह आसन वर्जित है। हर्नियाँ, पेप्टिक अल्सर व आँत की बीमारी वाले इसे न करें।

लाभ :

पेट के पुराने से पुराने रोग गैस की बीमारियाँ, पुराना कब्ज, मंदाग्नि, अजीर्ण तथा जिगर की शिथिलता दूर करने के लिए यह आसन अत्यन्त उपयोगी है। कुबड़ापन, हाथों व घुटनों का गठिया व जोड़ों का दर्द दूर होता है। चर्बी कम होती है तथा मोटा शरीर शीघ्र पतला होने लगता है। शरीर में रक्तावरोध सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। रीढ़ को लचीला बनाता है तथा समय से पूर्व हड्डियों की जर्जरता को रोकता है। भुजंगासन, शलभासन, तथा धनुरासन करने

वालों को बुढ़ापे का सामना नहीं करना पड़ता । मधुमेह रोगियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।
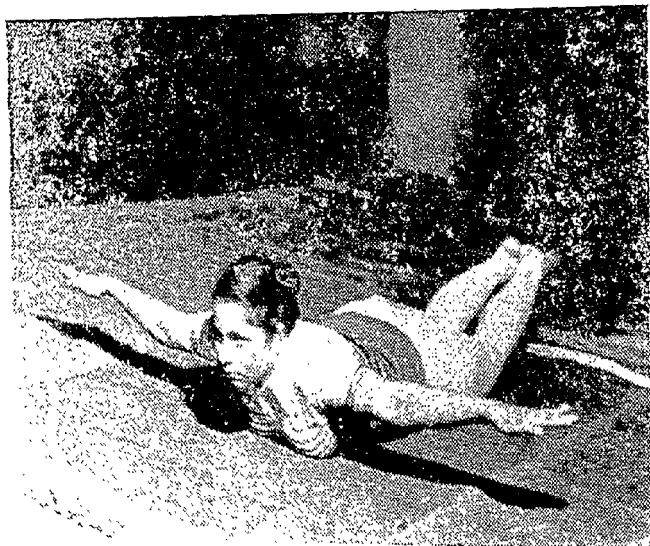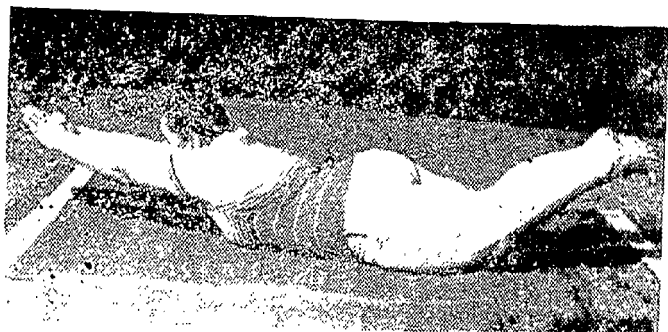
(८) नौकासन :

पेट के बल उलटे लेट जाइये । दोनों हाथ आगे लाकर मिला दें । पैर पीछे खिंचे रहें । हाथ, पाँव और सिर तीनों को एक साथ उठाइये । सिर दोनों हाथों के बीच में रहना चाहिये । यथा शक्ति रुकने के पश्चात् पूर्व अवस्था में आ जाइये तथा विश्राम कीजिए ।

लाभ :

लम्बाई बढ़ती है । मोटा पेट पतला होता है । जंघा, घुटने आदि के विकार दूर होते हैं । हाजमा ठीक होता है । गैस की बीमारियाँ ठीक होती हैं । शरीर में क्षमता बढ़ती है । मधुमेह में लाभदायक है ।

चतुर्थ खण्ड

बैठकर करने के आसन
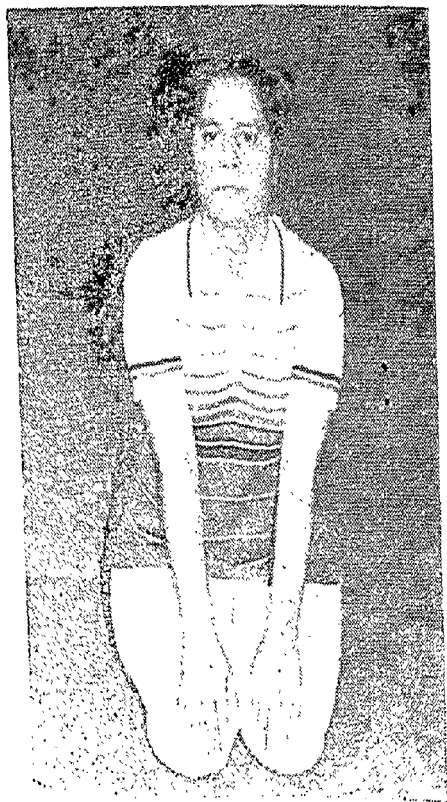
लाभ :

भोजन के तुरन्त बाद १० मिनिट से आधे घण्टे तक बैठने से भोजन
तरह पच जाता है। मन्दाग्नि के रोगियों के लिए अत्यन्त लाभकारी है।
टांगों व जंघाओं की नसों व पुट्ठों को शक्ति प्राप्त होती है। घुटने व मे
कठोर व मजबूत होते हैं। घुटनों का दर्द शीघ्रता से ठीक होता है। एक
आसन है जो भोजन के बाद किया जा सकता है। हर्निया में लाभदायक
महिलाओं के शिशु जन्म में सहायक है।

(२) शशांकासन :

दोनों हाथों को घुटनों पर रखते हुए वज्रासन में बैठ जाइए। ध्यान

हुए हाथों को ऊपर उठाते हुए सिर के बराबर लाइये। हाथों को धड की सीध में रखते हुए तथा सिर को तनिक पीछे झुकाते हुए कुछ समय रुकिये फिर पुन: श्वास छोड़ते हुए सिर को सामने की ओर मस्तक के जमीन से छूने तक झुकाइये। अभ्यास की अन्तिम स्थिति में हाथ और मस्तक जमीन पर आराम की स्थिति में रहने चाहिये।

लाभ :

दिल का रोग, यक्ष्मा (टी बी) प्लूरीसी व सीने सम्बन्धी रोग तथा दमा के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

(३) वक्षस्थल क्रिया :

सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ जायें तथा दोनों हाथों को घुटनों पर रखें। फिर श्वास लेते हुए (श्वास गहरा व लम्बा हो) दोनों हाथों को फैलाते हुए आगे से पीछे की ओर ले जायें तथा सीना फैलाए। फिर श्वास छोड़ते हुए दोनों हाथों को पुनः घुटनों पर ले आयें। इस प्रकार इस क्रिया को ३–४ बार करें।

लाभ :

दमा रोग के लिए विशेष उत्तम है तथा क्षय रोग भी इससे तुरन्त ठीक हो जाता है। वक्षस्थल सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। हृदय रोग वालों के लिए लाभ दायक है।

(४) कूर्मासन :

वज्रासन में बैठे हुए सर्वप्रथम दोनों हाथों की मुठ्ठीयों को बन्द कर लीजिये। अंगूठा मुठ्ठी के अन्दर रहे। फिर दोनो मुठ्ठीयों को नाभि के बराबर पेडू के साथ लगा दें तथा मुठ्ठियों से पेट को दबाते हुए तथा श्वास छोडते हुए आगे की ओर झुकिए तथा सीना घुटनों को छूने लगे इतने तक शरीर को झुकाइये तथा सामने की ओर देखिये। कुछ समय इस आसन में रुकने के पश्चात् श्वास लेते हुए उठिये तथा पूर्व स्थिति में आ जाइए।

इस क्रिया को ३ बार करें।

लाभ :

आंतों के रोग, गुल्म रोग तथा पेट सम्बन्धी अन्य रोग दूर होते हैं।
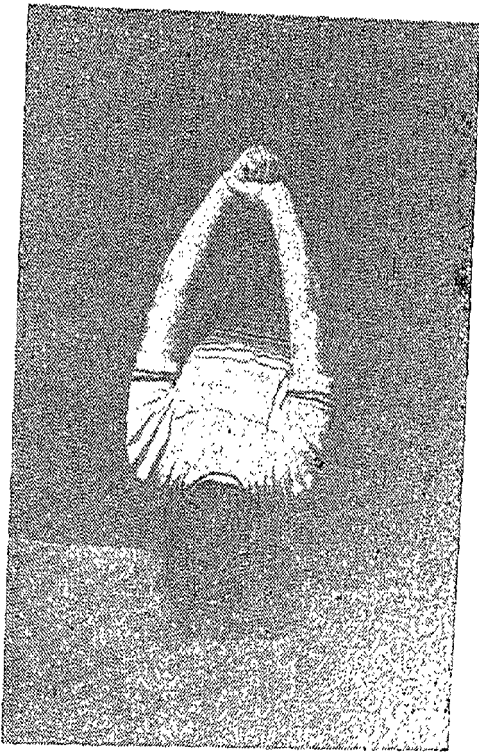
(५) योगमुद्रा :

वज्रासन में बैठे हुए सर्वप्रथम दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाइये तथा बायें हाथ की मुट्ठी को बन्द करिये । ध्यान रहे की अंगूठा मुट्ठी के बीच में हो । तत्पश्चात् दायें हाथ से बायें हाथ की कलई को पक्की तरह से पकड़ लें ताकि झुकते समय हाथ से छूट न जाय । श्वास छोड़ते हुए धीरे से आगे की ओर झुकने का प्रयत्न करें तथा मस्तक को जमीन तक लगा दें तथा दोनों हाथों को भी पीछे से उठाने का प्रयत्न करें । इसी प्रकार इस क्रिया को बदल कर करें (दायीं मुट्ठी मोड़ कर) इस प्रकार यह पूरा आसन हो जायेगा । श्वास लेते हुए आगे से उठिये । ध्यान रहे कि श्वास छोडते हुए झुकना और श्वास लेते हुए उठना है । यह क्रिया चार बार करें ।

लाभ :

इस आसन से पेट पर दबाव पड़ता है । मलावरोध व अपच में लाभदायक

है । इस क्रिया से पृष्ठ भाग में खिचाव होता है जिससे रीढ मजबूत होती है । सिर के भागों में अधिक खून का संचार होता है ।

मानसिक शान्ति प्राप्त होती है ।

लाभ :

इस आसन से रीढ़ की हड्डी अत्यधिक मजबूत होती है तथा कमर के र
ठीक होते हैं। कुबड़ापन दूर होता है।
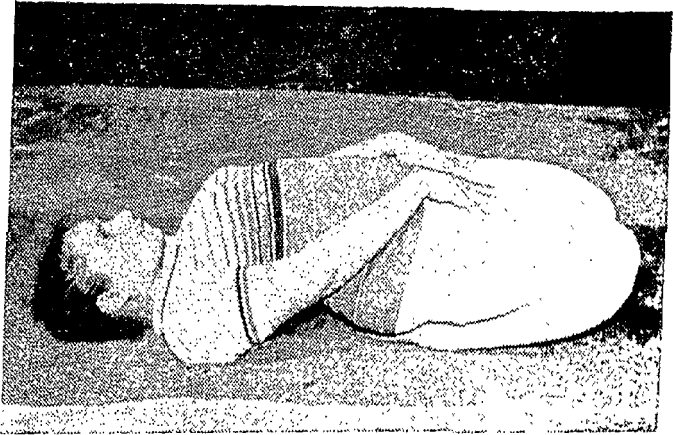
(७) सुप्त वज्रासन :

बज्रासन में बैठ जाइये। दोनों हाथों की कोहनियों को जमीन से टिकाते हुए धीरे-धीरे जमीन पर लेट जायें तथा सीना थोड़ा सा ऊपर को उठा हुआ हो। सिर जमीन पर लगा रहे। दोनों हाथों को जँघाओं पर रखें। धीरे धीरे श्वास लें व निकालें। कुछ समय रुकने के पश्चात् शवासन में आ जाये।

लाभ :

इस आसन से कुबड़ापन दूर होता है। रीढ़ में लचक आती है। वज्रासन के समस्त लाभ प्राप्त होते हैं।

मदद करता है । अंडकोष एवं हरनियां के रोग ठीक होते हैं । पैर और जंघ के ज्ञानतंतुओं की सूजन को दूर करता है । कब्ज, मन्दाग्नि, अरुचि और पीट दुखाव आदि दूर होते हैं ।

(९) अर्ध मत्स्येन्द्रासन :

यह आसन मत्स्येन्द्र ऋषि के नाम से रखा गया है । वे ही इस आसन को करते थे । इसलिए इसका नाम मत्स्येन्द्रासन पडा ।

सर्वप्रथम सीधे बैठे हुए बायीं एडि को गुदा के पास रखें। यह जननेन्द्रिय और गुदा के बीच के स्थान (पैरिनियल) को छूती रहे । दायें घुटने को झुकायें और बायें टखने कों बायीं जँघा के घुटने के पास रखें । दायें पैर को बायें कूल्हे के जोड के पास भूमि पर टिका कर रखें । बायीं बगल या भुजा का रिक्त भाग सामने को झुके हुए घुटने पर टेकें । बायें हाथ से दाहिने टखने को पकडें अथवा

हो सके तो उसी पैर के अँगूठे को पकड़ें । दाहिने हाथ को पीठ के पीछे ले जायें तथा बायीं जँघा को पकड़ने का प्रयत्न करें । सिर झुकने न पावें । बिना तनाव के यथाशक्ति अन्तिम अवस्था में रुकने के पश्चात् धीरे-धीरे सामान्य स्थिति में आ जायें । इसी प्रकार दूसरे पैर से यही क्रिया करें ।

लाभ :

इस से कमर दर्द तथा वात रोग दूर होता है तथा गर्दन, सिर तथा का दर्द भी ठीक होता है। पृष्ठ प्रदेश की मांसपेशियां लचीली होती हैं । नाडि तनाव रहित होती है । जठराग्नि प्रज्जवलित होकर भूख बढती है । मधुमेह ठीक होता है । कुण्डलिनी जाग्रत होती है ।
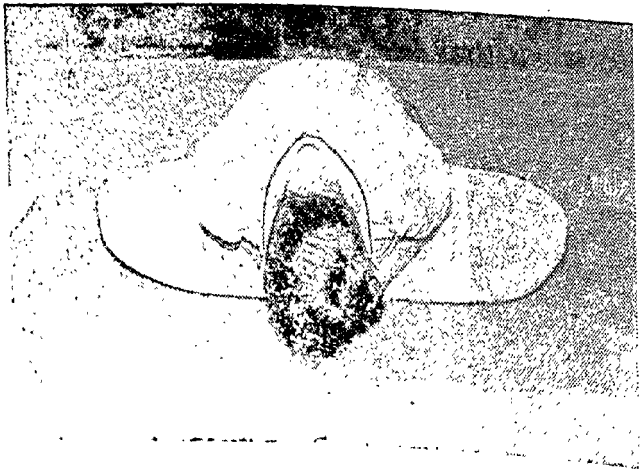
(१०) गोरक्षासन :

सीधे बैठे हुए सर्वप्रथम दोनो घुटनों को मोडिये तथा पांवों के पंजो पूरा अन्दर की ओर ले जाइये और दोनों पांव के तलवों को मिलाकर रखिये तत्पश्चात् दोनो हाथो से दोनों पांवों को अच्छी तरह से पकड लें ताकि वे खुल न पायें । फिर धीरे-धीरे श्वास छोडते हुए आगे की ओर झुकें तथा मस्तक भूमि पर लगाने का प्रयत्न करें । जब तक श्वास रुका रहे । फिर श्वास लेते हुए धीरे से वापिस आवें । इस क्रिया को दो तीन बार किया जा सकता है

लाभ :

यह आसन अधिक कठिन है । योगीन्द्र गोरखनाथ इस आसन का प्रयो करते थे इसलिए इसका नाम गोरक्षासन पड़ा । इस आसन से कई प्रकार कं सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । पुरुषों व स्त्रियों सम्बन्धी गुप्त रोगों के लि लाभदायक है ।
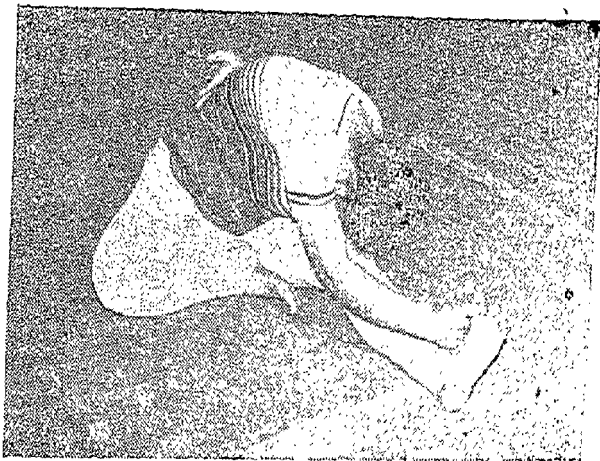
(११) अर्ध पश्चिमोत्तानासन :

सर्व प्रथम सीधे बैठ जाइये । फिर दोनों टांगों को बिल्कुल सीधा सामने की ओर फैला दें । दायें पैर को मोड़ दें तथा बाईं जंघा के साथ सटा दें बांया पैर बिल्कुल सीधा रहे । दायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें तथा बायें हाथ को पीछे कमर की ओर ले जायें तथा घुटनों से सिर लगाने की कोशिश करें । इसी प्रकार दायें पैर से करें ।

लाभ :

जठराग्नि की वृद्धि होकर पाचनशक्ति बढ़ती है । सूर्य नाड़ी को शक्ति प्राप्त होकर ब्रह्मचर्य पालन में सहायता मिलती है । गुर्दे सम्बन्धी समस्त रोग दूर होते हैं । आन्त्र शूल में उपयोगी है । कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है । टांगें शक्तिशाली होती हैं । मधुमेह में लाभदायक है ।
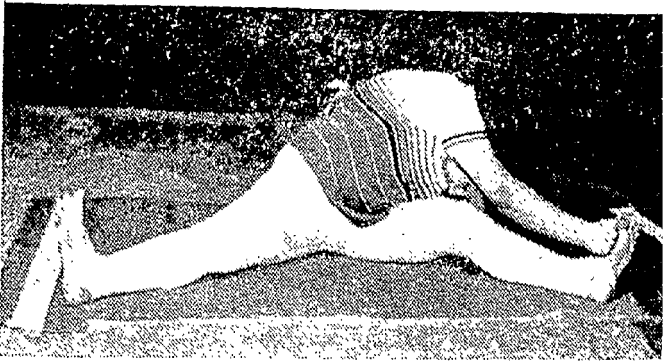
(१३) पक्षीआसन :

जमीन पर बैठकर दोनों टांगों को फैला लीजिए । जितना हो सके उत अधिक टांगों को फैलायें । तत्पश्चात् दायें हाथ से बायें पैर के अँगूठे को पक तथा बायें घुटने से मस्तक लगायें और बाँया हाथ पीछे कमर पर ले जायें फिर बाये हाथ से दाँयें पैर के अँगूठे कोपकड़े व मस्तक घुटने पर लगायें । इ प्रकार बार-बार गति से इस क्रिया को करें । १०-१२ बार इस क्रिया को करें

लाभ :

इस आसन से शरीर हल्का होकर अधिक कार्य करने की क्षमता बढ़ती है शरीर पक्षी की तरह हल्का रहता है । आलस्य नहीं आने पाता । काम कर में मन लगा रहता है। गुप्त रोगों के लिए लाभदायक है ।
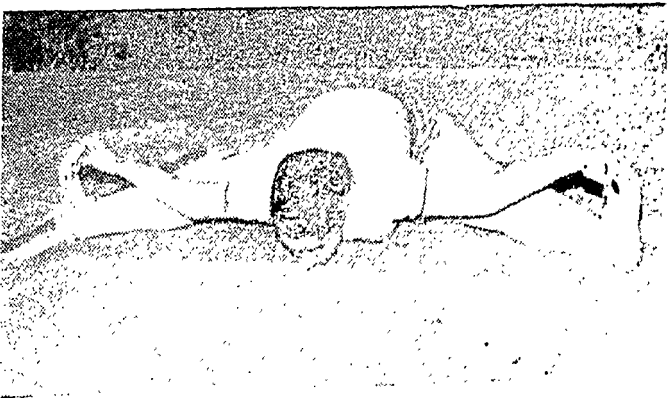
(१४) विस्तृत हस्त पाद शिरासन :

भूमि पर सीधे बैठे हुए दोनों पैरों को जितना सम्भव हो सके फैलाए ।

तत्पश्चात् दोनों हाथों से पैर के अँगूठे पकड लें तथा धीरे-धीरे आगे झुकते हुए छाती को जमीन से लगायें तथा ठुड्डी को जमीन से लगाते हुए सामने की ओर देखने की कोशिश करें। कुछ समय रुकने के पश्चात् धीरे से वापिस ऊपर उठें।

लाभ :

इस आसन से भी शरीर हल्का होता है। गुप्त रोग दूर होते हैं। रीढ में लचीलापन आता है। साइटिका दर्द ठीक होता है। टांगो का दर्द ठीक होता है।

मोर सर्प को खाकर, पत्थर खाकर उसे भी हजम कर लेता है। शरीर के विषैले त
दूर होते हैं। पद्ममयूरासन मयूरासन का ही रुप है। अन्तर केवल इतना
है कि इसमें पद्मासन लगा रहता है तथा मयूरासन में पैर खुले रहते हैं।

चर्म रोग फोड़े आदि ठीक होते हैं। मधुमेह में लाभदायक।

(१६) उदर चालन :

पद्मासन में बैठ जाइये। हाथ दोनों घुटनों पर रहें। थोड़ा आगे व
ओर झुकिये। श्वास लीजिये पेट फुलाइये श्वास निकालिये पेट पिचकाइये। दृ
पेट पर रहे। थोड़ा थोड़ा समय रुक कर ५० बार करें।

लाभ :

इस क्रिया के करने से पेट के समस्त रोग दूर होते हैं। पाचनशक्ति
बढ़ती है।

(१७) तडागी मुद्रा :

तडाग का अर्थ है तालाब। जिस प्रकार तालाब में पानी चलता हुआ दिखाई
देता है उसी प्रकार पेट चलता है।

सर्व प्रथम पद्मासन में बैठ जाइये। श्वास को नासिका द्वारा धीरे धीरे बाहर
निकालें तथा श्वास रोक कर (बाह्य कुम्भक करके) पेट को चलायें अर्थात् पेट
को अन्दर बाहर करें। इसमें भी हाथ घुटनों पर रहें तथा सिर थोड़ा आगे
की ओर झुका हुआ हो और दृष्टि पेट पर रहे अर्थात् हिलते हुए पेट को देखें।
यथाशक्ति यह क्रिया करने के पश्चात् धीरे-धीरे श्वास लेते हुए पूर्व स्थिति में आ
जायें।

लाभ :

इस क्रिया से भी पेट के समस्त रोग तथा पाचनशक्ति ठीक होती है। ३
बार करें।

(१८) उड्डियान बंध :

संस्कृत में उड्डि शब्द का अर्थ है 'उड़ना' और बन्ध का अर्थ है बांधना।
इस प्रकार किसी उड़ती हुई वस्तु को बांधना या अपने नियंत्रण में करना उड्डियान
बन्ध है। इससे स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है क्योंकि प्रायः सभी रोग
उदर की खराबी से ही उत्पन्न होते हैं।

सर्व प्रथम पद्मासन में बैठ जाइये। दोनों हाथ घुटनों पर रहें। थोड़ा आगे की ओर झुकते हुए श्वास बाहर निकालें तथा पेट को खाली कर दें। श्वास को रोकें अर्थात् बाह्य कुम्भक करें। अब पेट को जहाँ तक हो सके अन्दर दबायें, पीठ के साथ पेट लग जाये। ठुड्डी को कण्ठकूप के साथ लगायें अर्थात् जालंधर बन्ध लगायें। यथाशक्ति रुकने के पश्चात् धीरे-धीरे श्वास लेते हुए पूर्व स्थिति में आ जायें।

लाभ :

उदर की स्वच्छता एवं मालिश होती है। उदर के आभ्यांतरिक अवयव का एक प्रकार से शिथिलिकरण हो जाता है। कोष्टबद्धता, अपच एवं क्षुधा की कमी दूर होती है अर्थात् पाचन शक्ति बढ़ती है। कुण्डलिनी जाग्रत होती है। ३ बार इस क्रिया को करने से सौ वर्ष जीने का अधिकार प्राप्त होता है।

सावधानी :

उच्चरक्त चाप, हृदय रोग तथा यक्ष्मा से पीड़ित रोगी को यह क्रिया नहीं करनी चाहिये।

(१९) अग्निसार मुद्रा :

पद्मासन में बैठ जाइए। दोनों हाथों को घुटनों पर रखिये। होठों का गाउएवनाकर होठों द्वारा धीरे धीरे श्वास लीजिये। श्वास को अन्दर रोकिये तथा कपोल (गाल) को गुब्बारे की भाँति फुला लीजिये। ठुड्डी कण्ठकूप से लगी रहे अर्थात् जालन्धर बंध लगायें। यथाशक्ति रुकने के पश्चात् धीरे धीरे नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकाल दें। इस क्रिया को ३-४ बार करें।

लाभ :

जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञान होता है। यह अग्नि को (जठराग्नि) तीव्र करती है। इसके अतिरिक्त यह स्त्रियों के लिए प्रकृति प्रदत्त वरदान है। अर्थात् महिलाओं को इससे श्रृंगार प्रसाधन के बिना ही स्वाभाविक सौन्दर्य प्राप्त होता है। मुहांसे ठीक होते हैं तथा मुख की झुर्रियां आदि दूर होती हैं तथा मुख पर निखार आता है। अतः महिलाओं के लिए यह अत्यंत उपयोगी क्रिया है।

पंचम खण्ड

खडे होकर करने के आसन

(१) त्रिकोणासन :

सीधे खड़े हो जाइये। अपने दोनों पैरो को दो फुट का अन्तर रखते हुए फैला दीजिए। हाथों को कन्धों की सम रेखा में फैलाइएँ भुजाएँ भूमि के बिलकुल समानान्तर रहें। धीरे धीरे बायीं और झुकिये। दाँया घुटना सीधा और तना हुआ रहे। बाँयें पैर के अँगूठे को बायें हाथ की अङ्गुलियों से स्पर्श कीजिये। गर्दन को थोड़ा बाँयी ओर झुकायें तथा दाँयें हाथ को कान की सीध में सीधा रखें। इसी प्रकार बदल कर दाँयी ओर से करें।

लाभ :

रीढ़ का बहुत अच्छा व्यायाम होता है। पेट के अङ्ग संजीवित होकर भूख बढ़ती है। पाचन शक्ति बढ़ती है। कब्ज दूर होती है। शरीर हल्का होता है।

षष्ठ खण्ड
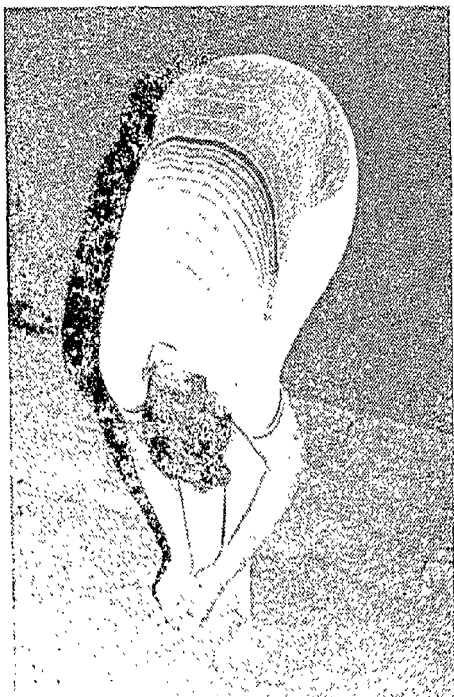
शिथलीकरण
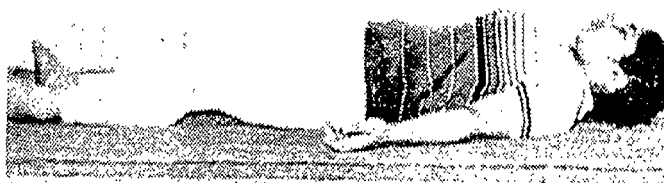
शवासन (शिथिलासन)

जैसा कि इस आसन के नाम से ही ज्ञात होता है । इसमें शरीर की स्थि शव (मुर्दे) के समान होती है । यह आसन सम्पूर्ण स्नायुओं और नाड़ियों आराम पँहुचाता है । इस आसन को सभी आसनों के अन्त में करना चाहि रात्रि को सोने से पूर्व करें ।

पीठ के बल सो जाइये । हाथ दोनों तरफ जमीन पर रहें । हथेलियाँ ऊ की ओर रहें । पैरों को सीधा लम्बा रखें तथा थोड़े खुले रहें सटे हुए नहीं आँखे बन्द कर लें । अब पूरे शरीर को आराम की स्थिति में ले आइये । धी धीरे गहरे और लम्बे श्वास लीजिये । शरीर के संपूर्ण स्नायुओं, नाड़ियों अ अवयवों को ढीला कर दीजिए । सर्वप्रथम पैरों के पंजों को ढीला करें, फिर ए को पिण्डली को, घुटनें को ढीला कर दें । छाती, भुजा, हाथ, गर्दन आदि सभ अवयवों को क्रम पूर्वक ढीला करते जायें । शरीर के सभी अवयव ढीले हो गये शिथिल हो गये ऐसा ध्यान करें । आते जाते श्वास पर ध्यान को केन्द्रित कीजिए प्रत्येक श्वास के साथ साथ ॐ का चिन्तन ॐ का ध्यान तथा ॐ का जप कीजिए १५ मिनट तक इस स्थिति में रहें ।

लाभ :

इससे पूर्णत: शान्ति, आनन्द और सन्तोष की प्रतीति होती है तथा आसनों की समस्त थकान दूर होती है तथा नवीन ताजगी का अनुभव होता है। मानसिक रोगियों के लिए तथा जिन्हे नींद नहीं आती उनके लिए यह अति उत्तम क्रिया है। इससे शरीर को तो आराम मिलता ही है साथ ही मन भी एकाग्र होता है। आसन करते समय स्नायुओं को कठिन परिश्रम करना पड़ता है तथा शवासन उन्हें पूर्ण शिथिलता तथा आराम प्रदान करता है।

तृतीय प्रकरण

प्राणायाम

प्राणायाम मुद्रा

प्राणायाम की उपयोगिता :

अष्टांग योग में चौथी श्रेणी प्राणायाम की है। अष्टांग में प्राणायाम [illegible] मणि कहलाता है। इसके बिना न हठयोग में सफलता मिल सकती है न राज [illegible] में। प्राणायाम के द्वारा अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। बहनो! [illegible] पुस्तक में मैं प्राणायाम के ऊपर अधिक प्रकाश न डाल सकूँगी संक्षेप में ही इस [illegible] वर्णन करूँगी। प्राणायाम विद्या एक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कर [illegible]

योगशास्त्र में प्राणायाम मुख्यतः ८ प्रकार के होते हैं जिनका संकेत [illegible] किया गया है। प्राणायाम एक बहुत शक्तिशाली क्रिया है। इस क्रिया से श[illegible] की ७२ हजार नाड़ियाँ शुद्ध होकर शरीर समस्त प्रकार के रोगों से विमुक्त हो[illegible]

सुखी हो जाता है । इस क्रिया के द्वारा नव्वे प्रतिशत रोग दूर हो जाते हैं । बहुत सी बहनें प्रश्न करती हैं कि प्राणायाम महिलाओं के लिए वर्जित है, मात्र पुरुष ही इसके अधिकारी हैं । यह मिथ्या भ्रान्ति है । मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ, महिलाओं का उतना ही अधिकार है जितना पुरुषों का । मैं प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा इसे सिद्ध कर देती हूँ । योगशास्त्र के अनुसार हठयोग और राजयोग की विद्या का ज्ञान योगविद्या के अधिष्ठाता स्वयं भगवान शंकर ने सर्व प्रथम अपनी अर्धाङ्गिनी माँ गौरी को ही दिया था, ऐसा शिव संहिता में वर्णन आता है । इससे अधिक प्रमाण और क्या मिल सकता है ।

लाभ जो इससे होता है वह है ईश्वर प्राप्ति, ब्रह्म साक्षात्कार। इस विषय का अधिक विस्तार न करते हुए अब प्राणायाम की सरल विधि का वर्णन करती हूँ जिसको अपनाकर आप अपना तथा अपने परिवार का भला कर सकती हैं जो अनेक रोगों से ग्रसित हैं।

प्राणायाम आठ प्रकार का बताया गया है। सर्व प्रथम शरीरस्थ नाड़ियों का शोधन आवश्यक है। कृतादि युग में साधु-सन्त नेति, धोति, कपाल भाति आदि क्रियाओं से नाड़ी शोधन करते थे। कलियुग के मनुष्य इन सब कठिन क्रियाओं को करने में असमर्थ होंगे ऐसा सोचकर ही जगद्गुरु भगवान श्री मच्छङ्कराचार्य जी ने नाडी शोधन नामक एक अति सरल विधि बताई है जिससे शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

नाड़ी शोधन प्राणायाम

उसे उदर में भरें और वहाँ स्थित षोडशमात्रा विशिष्ट अकार का चिन्तन करें। तत्पश्चात् उदर में भरी हुई उस वायु को कुछ काल तक धारण किये रहें और उस समय चौसठ मात्रा विशिष्ट उकार के स्वरूप का चिन्तन करते हुए प्रणव का जप करते रहें। जब तक सम्भव हो, जप में संलग्न रहकर वायु को धारण किये रहें। तदनन्तर बत्तीस मात्रा विशिष्ट मकार का चिन्तन करते हुए पिङ्गला नाड़ी के द्वारा धीरे-धीरे उस भरी हुई वायु को बाहर निकालें। यह एक प्राणायाम है। पुन: पिङ्गला नाड़ी द्वारा पूरक करें तथा अकार स्वरूप प्रणव का एकाग्रचित्त होकर चिन्तन करें। इन्द्रियों को वश में रखते हुए उकार स्वरूप का चिन्तन करते हुए इडा नाड़ी से रेचक करें। इसी प्रकार प्रतिदिन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

लाभ :

नित्य प्रति ऐसा अभ्यास करने से मनुष्य छ: महीने में ज्ञानवान हो जाता है। इससे देह बहुत हल्की मालूम पड़ती है। आलस्य, जड़ता एवं सुस्ती आदि दूर हो जाती है। कभी कभी आनन्द से मन उत्फुल्ल हो उठता है। एक वर्ष तक नियमित अभ्यास करने से ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है।

(२) उज्जायी :

सर्वप्रथम पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइये। मुख को कुछ झुकाकर कण्ठ से हृदयपर्यन्त शब्द करते हुए इडा और पिङ्गला नाड़ी से वायु का आकर्षण करके फुफ्फुस में प्रविष्ट करें। इस प्रकार अल्प परिमाण में वायु को खींचे। फिर यथाशक्ति कुम्भक करें तत्पश्चात् इडा नाड़ी से रेचक करें। बैठकर, चलते हुए, खड़े हुए या सोकर इस प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है। जब शारीरिक विकार के कारण दूसरे प्राणायाम न किये जा सकें या समय अनुकूल न हो तो लगभग एक घण्टे तक उज्जायी प्राणायाम कर सकते हैं।

लाभ :

इस प्राणायाम से कण्ठ का श्लेष्म कफ प्रकोप, उदर रोग, जलोदर, शोथ, मन्दाग्नि, अजीर्ण, मांस मेद आदि धातुओं के विकार और मलावरोध जनित समस्त रोग दूर हो जाते हैं तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

आलस्य आदि दूर होते है । पित्त प्रकोप शमन होता है । देह का बल बढ़ता है । अतः शरीर में निर्बलता नहीं आती ।

(४) शीतली :

ध्यान के आसन में बैठिये । जिह्वा को मुख के बाहर निकाल कर उसके दोनों किनारों को इस प्रकार मोडिये कि उसकी आकृति एक नलिका की भांति हो जाये । इस मुडी हुई जिह्वा से धीरे-धीरे गहरा श्वास लीजिये अर्थात् पूरक कीजिये । जिह्वा को अन्दर ले जाकर यथाशक्ति कुम्भक करें फिर दोनों नासापुटों से रेचक कीजिये ।

लाभ :

इससे गुल्म प्लीहा उदर रोग, अतिसार, पेचिश, पित्तवृद्धि, दाह, अम्लपित्त,

रक्तपित्त, क्षुदा, तृपा आदि रोगों का शमन होता है। शीतकाल में और कफ प्रकृति के व्यक्ति के लिए यह प्राणायाम हितकर नहीं है।

(५) भस्त्रिका :

पद्मासन में बैठ जाइये। दोनों हाथ घुटनों पर रहें। आँखे बन्द रहें। सर्वप्रथम दायें हाथके अँगूठे को दाँयी नासिका पर रखें अर्थात् दायी नासिका को अँगूठे से बन्द करे तथा बाँयी नासिका से पहले श्वास निकाले फिर उसी से श्वास लें। फिर बाँयी नासिका को कनिष्ठिका और अनामिका (अन्तिम दो अङ्गलियों) से बन्द कर दें तथा दायीं नासिका के अँगूठे को हटाकर दायीं नासिका से श्वास निकालें तथा पुनः लें। इस प्रकार धीमे धीमे गति बढ़ाते हुए लोहार की धौकनी की भाँति शब्द करते हुए १०० बार इस क्रिया को करें (जिससे श्वास निकालना उसी से लेना) फिर दोनों नासापुटों से लम्बा श्वास लेते हुए यथाशक्ति श्वास रोककर दोनों नासापुटों से धीरे धीरे श्वास निकालें।

लाभ :

यह प्राणायाम त्रिदोष निवारक है अर्थात् इसमें त्रिधातु विकृति से उत्पन्न समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। अग्नि प्रदीप्त होती है। सुषुम्नास्थित सब मल नष्ट हो जाते है। ब्रह्म ग्रन्थि विष्णु ग्रन्थि तथा रुद्र ग्रन्थि का भेदन हो कर सुषुम्ना में से प्राण तत्त्व ऊर्ध्वगमन करने लगता हैं।

(६) भ्रामरी :

ध्यान के किसी आसन में बैठ जाइये। मेरुदण्ड सीधा, मुख सामने, नेत्र बन्द तथा शरीर को शिथिल कीजिये। दोनों नासिका से पूरक कीजिये। श्वास रोकिये। तत्पश्चात् भँवरे की गुन्जार की भांति ध्वनि करते हुए धीरे धीरे श्वास को निकालिये अर्थात् रेचक कीजिये। मस्तिष्क में इस ध्वनि की तरगों का अनुभव कीजिये। इस प्रकार प्रारम्भ में ५ बार करें फिर शनैः शनैः बढ़ाते जायें।

लाभ :

मानसिक तनाव, क्रोध तथा चिन्ताएं दूर होती है, गले के रोग दूर होते हैं। स्वर में मधुरता आती है। आध्यात्मिक ध्वनि या नाद सुनाई देने लगता हैं।

(७) केवल कुम्भक :

कुम्भक दो प्रकार का होता है। (१) सहित कुम्भक (२) केवल कुम्मक। जिसमें श्वास प्रश्वास दोनों चलते हैं उसे सहित कुम्भक कहते है अर्थात् पूरक कुम्भक, रेचक तीनों हों। रेचक पूरक को छोड़ कर मुख से जो वायु का धारण हो उसे केवल कुम्भक कहते हैं। जब तक केवल कुम्भक में निष्णात न हों तब तक सहित कुम्भक करें।

लाभ :

इससे आधार शक्तिरुप कुण्डली का बोध होता है। सुषुम्ना नाडी अनर्गल हो जाती है अर्थात् काल आदि बंधन से रहित हो जाती है। कुण्डलिनी जाग्रत होती है। सभी प्रकार के दुःखों का नाश हो कर दीर्घायु प्राप्त होती है।

मूर्च्छा और प्लाविनी प्राणायाम की महिलाओं को आवश्यकता नहीं है अतः उनका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण

शुद्धिकरण की क्रियाएँ

हठयोग में शुद्धिकरण की छ: क्रियाएँ वर्णित की गयी हैं जिससे शरीर के विपाल तत्त्वों का निष्कासन होता है।

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते ॥ (हठयोग प्रदीपिका २-२२)

धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपाल भाति बुद्धिमानों ने ये छ: कर्म योगमार्ग में कहे हैं। इनसे देह शुद्धि, रोग निवृत्ति और स्वास्थ्य वृद्धि होती है। आज की अधिकांश जनता रोगों से ग्रस्त रहती है। इसका कारण [illegible]

हम लगातार अपने शरीर में विषाल तत्त्व और गंदगी जमा करते रहेते है
हमारा खान-पान, रहन–सहन, आदतें तथा दैनिक क्रिया कलाप ऐसे हैं कि
विषाल तत्त्वों के निष्कासन का मौका ही नहीं मिलता। इससे हमारी सं
शक्ति और स्वास्थ्य का ह्रास होता जाता है। शुद्धिकरण की क्रियाओं द्वारा
ह्रास को रोका जा सकता है। यह क्रियाएँ आभ्यन्तरिक दोषों को शमन क
में बहुत सहायक होती हैं। चिकित्सा शास्त्र औषधियों के द्वारा मनुष्य को स्व
रख सकता है जब कि योगशास्त्र के अनुसार यह छ: कर्म ही शरीर को पूर्ण
से निरोग रख सकते हैं।

इन छ: कर्मो में से हम यहाँ उन्ही क्रियाओं का वर्णन करेंगे जो सरल त
महिलाओं के लिए उपयोगी हैं। इससे आपके शरीर तथा मन की शुद्धि हो
तथा आप उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करेंगे। एक बार शरीर की शुद्धि होने
स्वास्थ्य में सुधार स्वत: ही होने लगता है।

(१) कुंजल क्रिया :

सर्व प्रथम थोड़ा गुनगुना पानी लीजिये (अर्थात् न अधिक गर्म हो न अधिक ठण्डा) घुटनों के बल बैठ जाइये (चित्र के अनुसार)। अब एक के बाद एक करके ४ से ६ गिलास तक जल्दी से जल्दी पानी पीने का प्रयत्न कीजिये। अधिकतम पानी पीकर सामने की ओर झुकिये। बाँया हाथ कमर पर रहे तथा दाहिने हाथ की पहली तथा दूसरी अंगुली को गले मे अधिक से अधिक भीतर डालिये। ध्यान रहे कि नाखुन कटे हुए एवं स्वच्छ हों क्योंकि नाखुन बड़े होने से गले में नाखुन चुभने का डर रहता है। जिह्वा के पृष्ठ भाग को अंगुलियों से रगडिये एवं उस पर दबाव डालिये। परिणाम स्वरुप वमन होगा और पीया गया संपूर्ण जल बाहर आ जायेगा तथा इसके साथ-साथ कफ तथा पित्त भी बाहर आ जायेगा। जिह्वा पर तब तक दबाव डालें जब तक पेट खाली न हो जाय।

प्रात: काल खाली पेट इस क्रिया को करना चाहिए। जो लोग रात्री को देर से भोजन करते हैं अथवा गरिष्ठ भोजन करते हैं उन्हें नित्य प्रति प्रात:काल इस क्रिया को अवश्य ही करना चाहिये।

(३) जलनेति :

इसके लिए एक विशेष प्रकार का लोटा उपयोग में लाया जाता है जिस पर टोंटी लगी रहती है। इसे नेति लोटा कहते हैं। (चित्र में देखिये) लोटे में गुनगुना पानी भरीये। पानी इतना गरम होना चाहिये जो नासिका छिद्र में डालने पर सहन किया जा सके। प्रति आधे लीटर पानी में एक चाय चमच भर नमक मिलाइये। ध्यान रहे कि पानी एकदम साफ हो इसलिए उस पानी को साफ कपड़े से छान लें।

विधि :

सर्वप्रथम लोटे की टोंटी को दायें नथुने के भीतर डालिये। लोटा हथेली के बीच में रहे इस ढंग से लोटे को पकड़ें। टोंटी को नासिका छिद्र के साथ लगाते हुए सिर को थोड़ा बायीं ओर झुकाइये तथा लोटे को इस प्रकार ऊपर उठायें

कि जल बायीं नासिका से बाहर प्रवाहित होने लगे। मुँह को पूरा खुला रखिये तथा मुख के द्वारा श्वास प्रश्वास कीजिये। इस प्रकार स्वतः ही जल दायीं नासिका से भीतर जाकर बायीं से बाहर आ जायेगा। लोटे की स्थिति तथा सिर के झुकाव की ओर विशेष ध्यान दें। जल समाप्त होने पर लोटे को नासिका छिद्र से हटा लीजिये तथा लोटे में और जल भरकर इसी क्रिया को दूसरें नासिका छिद्र से कीजिये।

इस क्रिया को करने के बाद नासिका को सुखाना अत्यंत आवश्यक है जिससे अन्दर पानी न रह जाय।

नासिका सुखाने की विधि :

दोनों पैरों को समीप रखते हुए खड़े हो जाइये। दोनों हाथों को पीछे कमर पर ले जाइये। बायें हाथ से दाहिने हाथ की कलाई को पकड़िये। कमर को थोड़ा आगे की ओर झुकाइये तथा श्वास प्रश्वास की क्रिया को कीजिये अर्थात् श्वास निकालिये तथा लीजिए। प्रथम सिर को ऊपर, फिर नीचे, फिर दायें व बायें इस प्रकार नासिका से श्वास निकालें व लें, मुख बन्द रहे। मुख से श्वास प्रश्वास न करें। इस प्रकार करने से नासिका में रुका हुआ समस्त पानी बाहर आ जायेगा।

इसके पश्चात् किसी भी सुखासन में बैठ जाइये। पूर्व बताई हुई विधि के अनुसार भस्त्रिका प्राणायाम कीजिये। इससे नासिका में कोई जल कण नहीं रह जायेगा। जब तक सम्पूर्ण जल निष्कासन न हो तब तक इस क्रिया को चालू रखें।
समय : प्रतिदिन प्रातः काल खाली पेट इस क्रिया को करें। जुकाम की हालत में इस क्रिया को अवश्य ही करें।

लाभ :

नेति क्रिया कपाल को शुद्ध करती है। नासिका, कान आदि के मल दूर होते है। नेत्र ज्योति बढ़ती है। दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। स्कन्ध की संधि के ऊपरवाले भाग के रोग समूह का नाश होता है।

सावधानी :

जल नेति के पश्चात् नासिका को पूर्णतः सुखा लेना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा लाभ की जगह हानि हो सकती है। जुकाम के कष्ट प्रद लक्षण प्रकट हो सकते है। इन क्रियाओं को योग्य व्यक्ति के निर्देशन में ही करें।

(४) वस्त्र धौति :

चार अंगुल चौडा और पंद्रह हाथ लम्बा पतला वस्त्र लीजिये । वस्त्र को गरम जल में धो लीजिये । जल से सींचकर उसे शनैः शनैः कण्ठ मार्ग से ग्रसें अर्थात् प्रथम दिन एक हाथ, दूसरे दिन दो हाथ, तीसरे दिन तीन हाथ, इस प्रकार एक-एक हाथ की वृद्धि से उस वस्त्र को ग्रसने का अभ्यास करें । उस वस्त्र के अन्तिम प्रान्त (छोर) को बाहर ही रखें फिर वस्त्र को शनैः शनैः बाहर निकालें । गुरु के निर्देश बिना इस क्रिया को कदापि न करें ॥

लाभ :

कास, श्वास, प्लीहा, कुष्ठ और बीस प्रकार के कफ रोग तथा पित्त रोग वस्त्र धौति से नष्ट होते हैं इसमें संशय नहीं है। शरीर निर्मल तथा शुद्ध होता है।

(५) शंख प्रक्षालन :

हठयोग में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है। प्रक्षालन का अर्थ है पूर्णतः साफ करना अथवा धोना। हमारी आँतो की आकृति शंख के समान होती है। हम वाह्य शरीर की सफाई तो रोज करते हैं लेकिन आँतों की सफाई नहीं हो पाती जो अत्यन्त आवश्यक है। यही एक ऐसी क्रिया है जिससे शंखाकार आँतों की तथा मुहँ से गुदा द्वार तक सम्पूर्ण अन्ननलिका की अच्छी प्रकार से सफाई हो जाती है। यह लम्बी प्रक्रिया है। इसके पूर्ण करने में एक से दो घण्टे तक का समय लग जाता है। योग्य योग शिक्षक के निदशन के विना इस क्रिया को नहीं करना चाहिये वरना हानि हो सकती है।

क्रिया से पूर्व की तैयारी :

शख प्रक्षालन करने से एक दिन पूर्व रात्री में हलका भोजन और अल्प मात्रा में खाना चाहिये। रात्री में देर से नहीं खाना चाहिये। प्रक्षालन के दिन क्रिया से पूर्व चाय, काफी या भोज्य पदार्थ ग्रहण नही करना चाहिये अर्थात् खाली पेट करना चाहिये। प्रातःकाल का समय ही इस क्रिया के लिए अति उत्तम है।

सर्वप्रथम किसी भी साफ बर्तन में कुनकुना पानी लीजिये। पानी का स्वाद नमकीन होने तक उसमें नमक मिलाइये, ध्यान रहे कि नमक की मात्रा न बहुत अधिक हो न बहुत कम, अर्थात् जितना पीया जा सके उतना नमक मिलाइये। यह क्रिया अत्यन्त जटिल है अतः इस जटिलता के भय को दूर करके घबराहट व मानसिक तनाव से रहित होकर कुछ व्यक्तियों के समूह के बीच इस क्रिया को करें ताकि सरलतापूर्वक यह क्रिया सम्पन्न हो जाय।

विधि :

तैयार किये हुए नमकीन पानी के दो ग्लास शीघ्रता से पीजिये। तत्पश्चात् निम्नलिखित चार आसनों का अभ्यास कीजिये। प्रत्येक आसन की १० से १२ आवृत्तियाँ कीजिये।
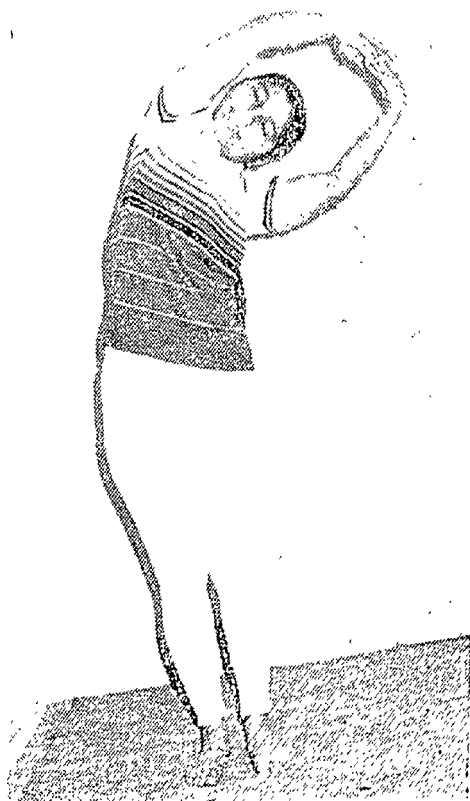
(१) कटिताडासन :

तानासन की भाँति दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में फँसा लीजिये। मिली हुई अँगुलियों सहित हाथों को सिर के ऊपर की ओर ले जाइये। क्रम पूर्वक दायीं ओर तथा बायीं ओर झुकिये। हाथों के साथ-साथ कमर भी झुकनी चाहिये। इस प्रकार १०-१२ बार दायीं तथा बायीं ओर झुकें।
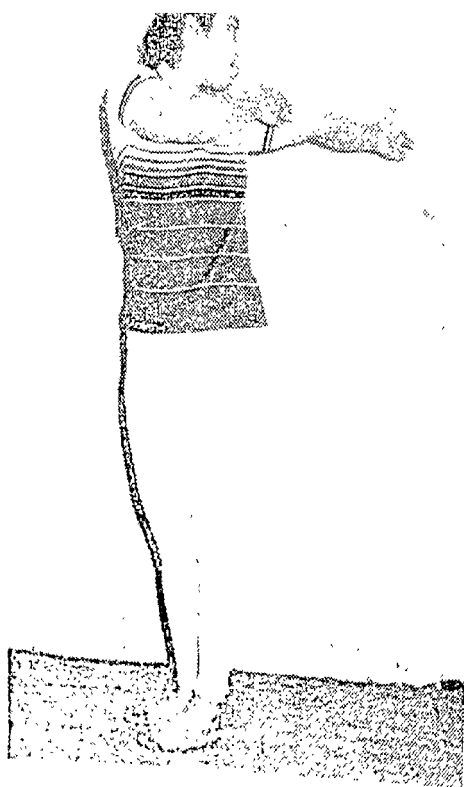
(३) उकड़ू आसन :

हाथों को घुटने पर रखते हुए पंजों के बल उकड़ू बैठ जाइये । जितना हो सके धड को दाहिनी ओर मोड़ते हुए शरीर के पीछे की ओर देखिये । दाया घुटना खड़ा रहें तथा बाएँ घुटने को जमीन पर झुकाइये । हथेलियों को घुटनों पर टिका कर रखिये । इसी प्रकार बायीं ओर कीजिये ।
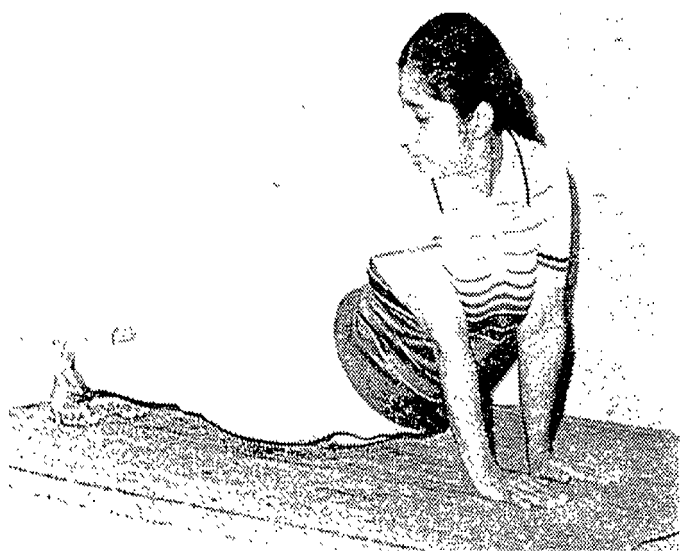
शंख प्रक्षालन में अन्ननलिका की जठर से गुदाद्वार तक की सफाई हो जाती है। इतना नमक जो ग्रहण किया है वह अन्दर न रह जाय इसके लिए बिना नमक का गुनगुना पानी पीकर कुंजर क्रिया (गजकरणी) करें। इसके पश्चात् आराम करें क्योंकि इस क्रिया में शरीर को बहुत परिश्रम करना पड़ता है।

प्रक्षालन के पश्चात् की सावधानी :

शंख प्रक्षालन के बाद ४५ मिनिट के बीच ही चावल मूंग की दाल तथा घी से तैयार की गयी खिचड़ी का सेवन कीजिये। घी की मात्रा कम से कम १०० ग्राम तक ले लेनी चाहिये। क्योंकि इस समय आँते बिल्कुल खाली हो जाती हैं अतः घी उन दिवालों के लिए कवच का काम करता है। चावल सरलतापूर्वक हजम होनेवाले तत्त्व प्रदान करता है। दाल प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा प्रदान करती है तथा शीघ्र हजम होती हैं। इस क्रिया के बाद दूध, चाय आदि न लें। हलका कपड़ा ओढ़कर अथवा सर्दी हो तो गर्म कपड़ा ओढ़कर २ घन्टे तक पूर्ण विश्राम करें। सायंकाल दाल तथा रोटी का अल्प मात्रा में सेवन करें। खट्टा फल या अन्य कोई खट्टी वस्तु न खायें। हो सके तो कम से कम एक सप्ताह तक संयमित भोजन ग्रहण करना चाहिये।

सामान्य स्थिति में महिने में एक बार इस क्रिया को अवश्य करना चाहिये। मधुमेह की स्थिति में सप्ताह में एक बार करना चाहिये।

लाभ :

सम्पूर्ण रोगों का मुख्य कारण आँते ही है। आँतों में विषैले पदार्थों के एकत्रित होने से रक्त अशुद्ध हो जाता है और अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इससे सम्पूर्ण आँतों की सफाई हो जाती है जिससे रक्त शुद्ध हो जाता है और स्वास्थ्य में सुधार होता है। शरीर में हल्कापन आता है।

मधुमेह के रोगियों के लिए तो यह वरदान स्वरूप है।

सावधानी :

इस क्रिया से पूर्व और पश्चात् के जितने भी निर्देश बताये हैं उन सबका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। एक भी नियम का उल्लंघन होने पर समस्या उत्पन्न हो सकती है। योग्य योग शिक्षक के निर्देशन के अभाव में कदापि न करें।

नोट—समय का अभाव होने पर शंख प्रक्षालन में बताई विधि के अनुसार छः ग्लास नमकीन पानी क्रमानुसार पीकर लघु प्रक्षालन करें। इस क्रिया को

समाप्ति के कम से कम एक घन्टे बाद कुछ खाना या पीना चाहिये । अन्य किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है ।